॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

वर्ष ६६ संख्या १०

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

(संस्करण १,८५,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर कार्तिक, वि०-सं० २०४९, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१८, अक्टूबर १९९२ ई०

चित्र-सूची

प्रत्येक साधारण अङ्कका मूल्य
भारतमें २.५० रु०
विदेशमें २० पेंस

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते ॥

कल्याणका वार्षिक मूल्य
(डाक-व्ययसहित)
भारतमें ५५.००रु०
विदेशमें ९ डालर
(अमेरिकन)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
रामदास जालान द्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

श्रीराम-लक्ष्मणद्वारा विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
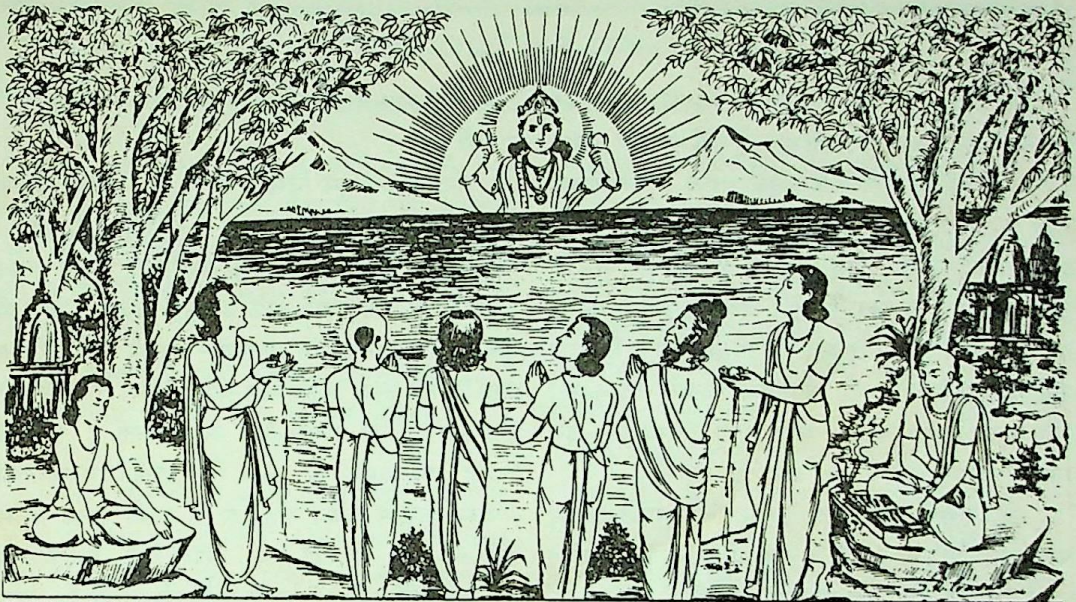
एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते।
अनुकम्पय मां भक्त्या गृहाणार्घ्यं दिवाकर ॥

वर्ष ६६ गोरखपुर, सौर कार्तिक, वि॰सं॰ २०४९, श्रीकृष्ण-सं॰ ५२१८, अक्टूबर १९९२ ई॰ संख्या १० पूर्ण संख्या ७९१

यज्ञ-रक्षा

ठाढ़े यज्ञमंडप द्वार।
राम-लक्ष्मण दोउ कौसिक यज्ञके रखवार ॥
हाथ सर-धनु पीठ तरकस बीर-बेस उदार।
यज्ञपूरुष, यज्ञपूजित, यज्ञ-राखनहार ॥
होम निर्भय करत मुनिगन वेद-मन्त्र उचार।
लहत जीवन-लाह रघुपति रम्य रूप निहार ॥
विघ्न असुरनको कहा प्रभु-शक्ति अमित अपार।
लोक-लीला करत हरि धरि भक्तहित अवतार ॥

'राम'

कल्याण

याद रखो—-भगवान्‌की भक्तिमें आडम्बरकी आवश्यकता नहीं है। बाहरी दिखावा तो वहाँ होता है जहाँ भीतरकी अपेक्षा बाहरका—करनेकी अपेक्षा दिखानेका महत्त्व अधिक समझा जाता है। भक्ति तो भीतरकी वस्तु है — करनेकी चीज है; इसमें दिखावा कैसा ? बस, चुपचाप मनको चले जाने दो उनके चरणोंमें और मस्त हो रहो ! जब तुम्हारे पास मन ही अपना न होगा तो दूसरी बात सोचोगे ही कैसे ? दिन-रात आलिङ्गन करते रहो अपने प्रियतमका भीतरके बंद कमरेमें और बाहरको भूल जाओ। वस्तुतः ऐसी अवस्थामें — इस मस्तीकी मौजमें बाहरकी याद आती ही किसे है ?

याद रखो—किसी दूसरे कामके लिये भगवान्‌से प्रेम करना सच्चा प्रेम नहीं है। वह तो असलमें प्रेमका तिरस्कार है। प्रेममें चाह नहीं होती,'फिर प्रेम क्यों करते हो ?' इसीलिये कि 'किये बिना रहा नहीं जाता।' 'मनको न जाने दो उधर !' 'जाने देनेकी कौन-सी बात, मन इधर तो आता ही नहीं। एक क्षणके लिये भी तो वहाँसे हटना नहीं चाहता। उसे न कोई चाह है न परवाह ! वह तो मतवाला हो गया है।' यह है भगवत्प्रेम। इसीकी साधना करो।

याद रखो—जब सच्चे प्रेमका स्रोत हृदयमें बह निकलेगा तब क्षणमें ही अनन्त कालकी सारी कालिमा धुल जायगी। फिर स्मरण, कीर्तन, ध्यान और तन्मयता अपने-आप ही होने लगेंगे। रोमाञ्च, अश्रुपात आदि सात्त्विक भावोंका उदय और अभ्युदय स्वाभाविक ही होता रहेगा। ऐसा ही भक्त भुवनको पावन करनेवाला होता है।—**'मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति।'**

याद रखो—सच्चा सौन्दर्य वही है, जहाँ भगवान्‌का प्रेम छलक रहा है। भगवत्प्रेमको छोड़कर जो कुछ भी है वह तो सदा ही भयानक और बीभत्स है। मन जब विषयासक्तिसे रहित होकर सारी असद्भावनाओंसे मुक्त हो जाता है तब उसमें भगवत्प्रेमकी प्रतिष्ठा होती है। इस प्रेमसे जिस स्वरूपका प्रकाश होता है, वस्तुतः वही यथार्थ सुन्दर है।

याद रखो—इस प्रेमकी साधनाके लिये आवश्यकता है निष्कपट प्रेम-कामनाकी। बस, उनका प्रेम ही चाहो, प्रेमसे ही चाहो, प्रेममें ही चाहो। दिल खोलकर सरलतासे उन्हें पुकारो। भगवत्प्रेम [illegible] है। टटोल-टटोलकर देखते रहो, उसमें कोई दूसरी कामना छिपी तो नहीं है !

याद रखो—तुम जिसको चाहते हो, जिसको अपना बनाना चाहते हो, उसके अनुकूल तो तुम्हें होना ही पड़ेगा। तुम भगवान्‌को और उनके प्रेमको चाहोगे तो तुम्हारा पहला कर्तव्य होगा, तन-मनसे उनके अनुकूल चलना ! साथ ही तुम्हें अपने बाहर-भीतरके आचरणोंसे यह भी सिद्ध कर देना होगा कि तुम उनके सामने भोग-मोक्ष सभीको तुच्छ समझते हो। इसमें विशेष सावधानीकी आवश्यकता है, नहीं तो विशुद्ध प्रेम-कामना ही उदय नहीं होगी। भवसागरकी भयानक तरङ्गोंसे बचना चाहते हो तो उनको पुकारो, उनसे कहो—'नाथ ! मैं जहाँ गया, वहींसे गिरा, क्योंकि मुझे अभीतक कोई अच्युत मिला ही नहीं। तुम अच्युत हो, आज मैं दुःखी-दीन होकर तुम्हारी शरण आया हूँ। मुझे इस भयानक भयसे बचा लो।'

निश्चय समझो—तुम्हारी पुकार सच्ची होगी तो वे अवश्य-अवश्य तुमको बचा लेंगे। वे यह नहीं देखेंगे—तुम कौन हो, किस श्रेणीके हो, किस प्रकारके आचार-विचार रखते हो, पुण्यात्मा हो या पापी हो, वे देखेंगे केवल यही कि तुम्हारा उनपर—उनकी कृपापर विश्वास है या नहीं और तुम्हारी पुकारमें कितनी सचाई, कितना प्रेम है।

याद रखो—भगवान् अशरण-शरण हैं, दीनबन्धु हैं, पतितपावन हैं, तुम अपनेको यथार्थ ही अशरण, दीन और पतित मानकर उनकी ओर निहारोगे और अपनानेके लिये उन्हें पुकारोगे तो निश्चय ही वे तुम्हें वैसे ही अपनाकर, पवित्र बनाकर अपनी गोदमें ले लेंगे, जैसे स्नेहमयी जननी मैलेसे भरे प्यारे पुत्रको गोदमें उठाकर स्वयं अपने ही हाथों उसका मल धोकर उसे हृदयसे लगा लेती है।

निश्चय करो—भगवान्‌के समान तुम्हारे प्यारे, निकट-से-निकट आत्मीय, प्राणोंके प्राण, जीवनके जीवन और आत्माकी आत्मा केवल भगवान् ही हैं। तुम उनको बहुत ही प्यारे हो। प्यारे ! प्यारसे उन्हें एक बार पुकारो तो सही। देखोगे, तुम्हें बदलेमें कितनी जल्दी और कितना अनोखा उनका प्यारा प्यार मिलता है। — शिव

सगुणोपासनामें सरलता

(अनन्तश्री ब्रह्मलीन स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

श्रीकृष्णचन्द्र परमानन्दकन्द भगवान्‌से अर्जुनने प्रश्न किया कि जो भक्त आपकी परम श्रद्धासहित उपासना करते हैं और जो अव्यक्त-अक्षरकी उपासना करते हैं—इन दोनोंमें कौन अतिशय रूपसे आत्यन्तिक पुरुषार्थप्राप्तिके उपायको जाननेवाले हैं?—

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः॥

(गीता १२।१)

प्रश्नका आशय यह है कि 'गीता' में द्वितीय अध्यायसे लेकर दशम अध्यायपर्यन्त भगवान्‌ने भिन्न-भिन्न स्थलोंमें—सर्वोपाधिविनिर्मुक्त, निराकार, निर्विकार, सर्वेन्द्रियाद्यगोचर ब्रह्मकी एवं सर्वैश्वर्यसर्वज्ञानशक्त्यादिसम्पन्न विशुद्ध सत्वमय सगुण भगवान्‌की उपासनाका वर्णन किया है। विशेषतः विश्वरूपाध्यायमें भगवान्‌ने सगुण परमेश्वरके अचिन्त्य, अद्भुत, लोकोत्तरचमत्कारकारी स्वरूपका दर्शन भी कराया और अन्तमें **'मत्कर्मकृत्'** इस वचनसे यह कहा कि—

'मेरे लिये श्रौत-स्मार्तकर्म करता हुआ, मुझे ही ध्येय, ज्ञेय, परमाराध्य समझता हुआ मेरी भक्ति करे और सर्वभूतोंमें वैरभावविवर्जित हो, तो प्राणी मुझे प्राप्त कर लेता है।'

ऐसी स्थितिमें यह संदेह होना स्वाभाविक है कि दोनों उपासनाओंमें कौन श्रेष्ठ है? 'एवं' शब्दसे अव्यवहित पूर्वोक्त प्रकारका परामर्श होता है। यद्यपि अव्यवहित पूर्व ग्यारहवें अध्यायमें विश्वरूपका वर्णन है, तथापि यहाँ सविशेष स्वरूप-मात्रकी उपासनाका प्रश्न समझना चाहिये। अर्थात् जो कोई भगवान्‌के अचिन्त्यानन्त कल्याणगुणगणार्णव विश्वरूप एवं श्रीमन्नारायण, श्रीसदाशिव अथवा श्रीकृष्णचन्द्र, परमानन्दकन्द श्रीमद्राघवेन्द्र रामचन्द्रकी उपासनामें निरत है और जो भगवान्‌के निर्विशेष स्वरूपमें निरत है, इन दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है?

तब श्रीभगवान्‌ने कहा—जो महानुभाव मेरे सगुण-स्वरूपमें मन लगाकर परम श्रद्धासे उपासना करते हैं, वे मेरे मतमें अत्यन्त श्रेष्ठ हैं—

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः॥

(गीता १२।२)

तब क्या निर्गुण-स्वरूपमें परिनिष्ठित श्रेष्ठ नहीं है? इस आशङ्काका समाधान करते हुए भगवान् कहते हैं कि अव्यक्त, निर्गुण ब्रह्ममें निरतचित्त पुरुषोंको क्लेश अधिकतर होता है, क्योंकि देहधारियों—देहाभिमानियोंको अव्यक्त गति निर्गुण-प्राप्ति-सम्पादन करनी बहुत कठिन है—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥

(गीता १२।५)

यहाँ यह कहा जा सकता है कि जब श्रुतियोंमें निर्विशेष ब्रह्मकी उपासनासे अविद्या, तत्कार्यात्मक प्रपञ्चनिवृत्ति तथा परमानन्दप्राप्तिरूप मोक्ष सद्यः श्रुत है एवं सविशेष ब्रह्मकी उपासनासे ब्रह्मलोककी प्राप्ति कही गयी है, जिससे कालान्तरमें कैवल्य प्राप्त होता है, तब निर्विशेष ब्रह्मकी उपासनासे सविशेष सगुण ब्रह्मकी उपासनाका उत्कृष्टत्व कैसे कहा जा सकता है? यद्यपि यह ठीक है कि अदृश्य, अग्राह्य, अचिन्त्य, निराकार, निर्विकार, प्रत्यक्-चैतन्याभिन्न परब्रह्म परमात्माकी उपासनासे प्रत्यक्-चैतन्याभिन्न परब्रह्मका साक्षात्कार होनेसे मूलाविद्याकी निवृत्ति होती है और अविद्या, तत्कार्यात्मक प्रपञ्चकी निवृत्ति होते ही अनावृत परमानन्दघन ब्रह्मात्मनाऽवस्थानरूप सद्योमुक्ति प्राप्त हो जाती है और सगुण ब्रह्मकी उपासनासे ब्रह्मलोककी प्राप्ति एवं कल्पान्तमें ब्रह्माके साथ कैवल्य-मुक्ति प्राप्त होती है, अतः सगुणोपासनाकी अपेक्षा फलदृष्टिसे निर्गुणोपासनाका ही महत्त्व है, तथापि निर्गुणोपासनामें कठिनाई अधिक है, सगुणोपासनामें सरलता है—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषाम्।

यदि कहा जाय कि निर्गुण ब्रह्मकी प्राप्ति उत्कृष्ट है, अतः उसमें अधिकतर क्लेश होना उसकी निकृष्टताका हेतु नहीं है, क्योंकि उत्कृष्ट फलप्राप्तिमें अधिकतर क्लेश होता ही है, तो यह ठीक नहीं, क्योंकि सगुण-उपासनासे भी उसी फलकी प्राप्ति होती है, जिसकी निर्गुणोपासनासे। इसका कारण यह है कि

भगवत्कृपासे भगवत्स्वरूप साक्षात्कारद्वारा उसी निर्गुणोपासक-प्राप्य कैवल्यपदकी प्राप्ति हो जाती है।

मनोवचनातीत, अनिदमात्मक, अनिर्देश्य ब्रह्मका प्राणिबुद्धिमें आरोहण ही अतिकठिन होता है। नाम-रूप-क्रियात्मक दृश्यप्रतीतके निराकरणके बिना निर्दृश्य दृक्का अभिव्यञ्जन होना अशक्य है। क्योंकि, जैसे चन्द्रमाके किसी असाधारण अवस्थाविशेष विशिष्टस्वरूपपर ही राहुका प्राकट्य होता है अन्यथा नहीं, वैसे ही दृश्याकार परिणामविवर्जित रजस्तमोऽननुविद्ध विशुद्धचित्तसत्त्वपर ही—प्रत्यक्-चैतन्याभिन्न निर्विशेष ब्रह्मका साक्षात्कार होता है। चित्तकी तादृशी अवस्था-सम्पत्ति देहाभिमानियोंके लिये अत्यन्त दुःशक है। इसके विपरीत सगुणोपासनामें सरलता है। यद्यपि बाह्य विषयोंसे मनःप्रत्यावर्तनपूर्वक भगवत्स्वरूपमें मनोयोग करना कठिन ही है, तथापि निर्गुण, निर्विशेषमें मनोयोग उससे भी कठिन है। उसकी अपेक्षा सगुणमें मनका आकर्षण होना सरल है। भगवान्की मङ्गलमयी मनोरञ्जक लीलाएँ मुक्त, मुमुक्षु, विषयी आदि सब तरहके अधिकारियोंके चित्तको खींचनेवाली होती हैं।

जनसाधारण, वे चाहे ज्ञान, तत्साधनविहीन भी क्यों न हों, उनके कल्याणार्थ निर्गुण, निराकार, निर्विकार, शुद्ध, सच्चिदानन्दघन परब्रह्म सगुण, साकाररूपमें प्रकट होता है—

नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।
अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः॥

(श्रीमद्भा० १०। २९। १४)

राम, कृष्ण, विष्णु, शिवकी उपासना शुद्ध ब्रह्महीकी उपासना है। बुद्धि कुछ भी हो, किंतु जिस वस्तुकी उपासना होती है, उसीकी प्राप्ति होती है। जैसे दीपक-बुद्धिसे भी यदि चिन्तामणिमें प्रवृत्त हुआ जाय, तो भी प्राप्ति चिन्तामणिकी ही होती है, वैसे ही चाहे जिस बुद्धिसे भगवान्की उपासना हो, प्राप्ति उस परमात्माकी ही होती है।

सच्चिदानन्द परब्रह्म आकाशादि समस्त प्रपञ्चका कारण है और सर्वत्र विराजमान है। विशेषतः बुद्धिरूपा गुहा या हार्दाकाशमें उसका विशेष रूपसे उपलम्भ होता है। जैसे चन्द्रके सम्बन्धसे राहुका दर्शन होता है, वैसे ही शुद्ध बुद्धिके सम्बन्धसे परमात्मपदका दर्शन होता है। [illegible] भगवान्की सगुण मूर्ति ही वास्तविक दिव्य मूर्तिरूपमें व्यक्त होती है। भगवान् सर्वत्र होते हुए भी मायाजवनिका [पर्दे] से ढके हैं। उसे हटाकर वे जहाँसे चाहें वहाँसे व्यक्त हो सकते हैं। पाषाणसे भी मायाजवनिकाको हटाकर भगवान् प्रह्लादके लिये प्रकट हो सकते हैं, तब फिर शुद्ध मन तो भगवान्के उपलम्भका साधन ही है।

वस्तुतः किसी भी वस्तुमें चित्तको एकाग्र करनेसे मूल परमात्मपदहीकी प्राप्ति होती है। जैसे स्फटिकमें लाल पुष्पके सम्बन्धसे '**रक्तः स्फटिकः**' [लाल स्फटिक है] ऐसी बुद्धि होती है, उसीमें यदि किसीको 'स्फटिक है' ऐसा ज्ञान प्रमुष्ट हो जाता है, तो उसे उसमें पद्मराग मणिकी बुद्धि होती है। आगे चलकर चन्द्रकी चाँदनी आदिके संसर्गसे उसीमें इन्द्रनीलकी बुद्धि होने लगती है। फिर भी इन सभी बुद्धियोंका आलम्बन एक स्वच्छ स्फटिक ही है। वैसे ही एक शुद्ध ब्रह्मतत्त्व ही मायाके सम्बन्धसे अव्यक्त ब्रह्म और सूक्ष्म प्रपञ्च उपाधिसे उपहित होनेपर हिरण्यगर्भ एवं स्थूल प्रपञ्चसे उपहित होकर वही विराट् कहलाता है। जैसे स्वच्छ स्फटिकमें ही इन्द्रनील-बुद्धिसे दृढ़ चिन्तनद्वारा इन्द्रनील-बुद्धि मिटकर पद्मराग-बुद्धि होगी।

यह दृढ़ चिन्तनकी महिमा है कि वह चिन्तनीय वस्तुका यथार्थ स्वरूप अवगत करा देता है। अतः पद्मरागका चिन्तन रक्त स्फटिकका बोध करा देगा। पुनश्च उसके चिन्तनसे अन्तमें अवश्य ही '**शुद्धः स्फटिकः**' ऐसा बोध हो जाता है। वैसे ही स्थूलका चिन्तन करते-करते सूक्ष्मका और फिर उसका चिन्तन करते-करते कारणका, फिर कार्यकारणातीत शुद्ध ब्रह्मका बोध (साक्षात्कार) होता है। शुद्ध मन तो ऐसी सुन्दर उपाधि है जहाँ '**स्वच्छः स्फटिकः**'के समान शुद्ध ब्रह्मका बोध होता है। अन्य मूर्तियोंके चिन्तनमें चिन्तनीय पदार्थ पृथक् होता है, मन चिन्तन-व्यापारमें ही लगा रहता है। परंतु यहाँ तो मन ही ध्येय भगवान्की मूर्तिरूपसे भी व्यक्त होता है और वही चिन्तन करनेवाला होता है। मानस जपमें भी यही हाल है, वहाँ मनको ही मानस मन्त्र बनना पड़ता है। इस मानस जप और ध्यानसे मनकी शुद्धि, एकाग्रता, भगवान्के वास्तविक स्वरूपकी प्राप्ति बड़ी ही सुविधाके साथ हो जाती है।

अमूल्य समयका सदुपयोग कैसे करें ?

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका प्राचीन प्रवचन)

[गताङ्क पृष्ठ-सं० ६९३ से आगे]

भगवान् श्रीकृष्ण गीताके चौथे अध्यायके २१ वें श्लोकमें कहते हैं कि—

'निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।'

निराशीः—आशारहित, कामनारहित यानी निष्काम-भावसे कर्म करनेवाला जो कर्म करता है, संसारमें भगवद्-भावोंका प्रचार करता है और बदलेमें लेता कुछ नहीं। निष्कामभाव और मन-बुद्धि-इन्द्रियाँ जिसकी जीती हुई हैं, जिसने संसारके विषय-भोगोंसे वृत्तियोंको खींच करके अपने वशमें कर रखा है, चित्तको जिसने जीत लिया है, एक वक्त रूखा-सूखा जो मिल जाता है वही खा लेता है और इन्द्रियोंका जो विषय है उसे इन्द्रियोंको देता नहीं है तथा परिग्रह-संग्रहका त्याग कर दिया है। जो कुछ अपने पास बचा था वह सब भगवान्‌को समर्पण कर दिया। पचास वर्ष तो फालतू बीत गये और बाकी जो पचास वर्ष रहे उसे भगवान्‌के चरणोंमें अर्पण कर दिया। अपने पास जो कुछ बर्तन, कपड़ा, गहना आदि सामग्री घरमें थी, वह सब भगवान्‌के समर्पण कर दिया। अपने पास कुछ भी नहीं रखा, इसी प्रकार पुत्र, धन तथा शरीरमें जो बल, बुद्धि, तेज आदि था वह और मन-बुद्धि-इन्द्रियाँ इन सब पदार्थोंको भी भगवान्‌के अर्पण कर दिया। ये सब चीजें हमारी नहीं आपकी हैं। समर्पणके बाद व्यक्ति अपनेको भगवान्‌का ऋणी मानकर ये सब चीजें उन्हींकी समझकर इसकी रक्षामात्र करता है। जैसे चौकीदार धनका रखवाला होता है, उसका मालिक नहीं। ऐसे ही इस शरीरके मालिक तो भगवान् हैं, हम तो इसकी रखवाली और देखभाल करते हैं। घरमें बैठकर इसकी रखवाली करे कि यह कायम रहे, बना रहे। तो इस संसारमें हमलोग इस प्रकार अपना समय बितावें—भगवान्‌के नामका जप, भगवान्‌के स्वरूपका ध्यान और पूजा, उनके चरणोंकी सेवा और उनकी बातोंको कानोंसे सुनना, उनको नमस्कार करना और प्रभुको स्वामी तथा अपनेको सेवक समझना। प्रभु अपनेको सखा समझते हैं, मित्र समझते हैं इसलिये सखाभाव भी रखें। हम तो उसके लायक नहीं हैं, किंतु [illegible] समझकर दूकानमें मुनाफेमें हमारी एक चौथाई साझेदारी कर दी। अतः हमें मुनाफा होना ही है। इस प्रकारसे मनुष्य निष्कामभावसे थोड़ा भी कार्य करता है तो उससे उसका कल्याण हो जाता है। हमलोगोंको अपना सर्वस्व भगवान्‌के समर्पण कर देना चाहिये। अपनेमें जो बल-बुद्धि है उसे अर्पण करना क्या है कि अपनी शक्तिभर भगवान्‌की प्राप्तिके लिये भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार प्रयत्न करना, बलका प्रयोग करना है और अपना जो समय है उसे तो भगवान्‌के समर्पण कर ही दिया। अपनेमें जो बुद्धि है वह भी भगवान्‌के समर्पण कर देना भगवान्‌के गुण और प्रभावको समझ-समझकर क्षण-क्षणमें मुग्ध होना बुद्धिका काम है। फिर हमारे प्रभु कितने दयालु हैं, हमारे सिरपर ऋण हो गया, उसके लिये भी भगवान् मदद करके उस ऋणकी पूर्ति कर लेते हैं। हमारे पास तो पूँजी नहीं कि रोजगार करके उस ऋणसे मुक्त हो जावें। हमारी मदद भगवान् ही करते हैं। भगवान्‌के नामका जप और ध्यान लोगोंसे कराना, रोजगार-व्यवहार सब भगवान्‌के नामपर ही होता है। इस प्रकार भगवान्‌ने अपना फारम हमें सौंप दिया।

दूसरे एक बेईमान आदमीने आकर कहा कि इसको तो आपने अपना फारम सौंप दिया और मुझको भी सौंप दें तो मैं भी आपके ऋणसे मुक्त हो जाऊँ। उन्होंने कहा—'तुम बेईमान आदमी हो, तुम्हें फारम नहीं सौंप सकते।' वह कहता है कि 'आप तो नहीं सौंपते, किंतु मैं आपका फारम डाल लूँगा।' तो उसने अपने फारमपर भगवान्‌का नाम डाल लिया। भगवान्‌की दूकान है, माला लेकर बैठ गया 'राम-राम' करता रहा और बोला—फारम या दूकान तो हरिनारायणकी है। बोले, आप क्या करते हो ? वह बोला, हम तो भगवान्‌के गुमाश्ते हैं, भगवान्‌पर ही हम तो निर्भर हैं और ये दूकान भगवान्‌की है। अपनेको भगवान्‌का भक्त सिद्ध करके लोगोंको धोखा देना शुरू किया। लोग कहते, माला फेरता है, भजन करता है, बड़ा भला आदमी है तो लोग विश्वास [illegible] अपनेको

धर्मात्मा और भगवान्‌का भक्त सिद्ध करता है। इस प्रकार संसारमें नाम और सत्संगकी ओटमें सत्संगी और भगवान्‌का भक्त कहलाकर लोगोंको धोखा देता है जो घोर नरकका रास्ता है। तो ऐसे बेईमान और धोखेबाजोंको भगवान् दण्ड देते हैं और जो वास्तवमें सच्चे भगवान्‌के भक्त हैं उनका उद्धार कर देते हैं। अतः हमलोगोंको सच्चे भक्तके समान अपना जीवन बिताना चाहिये, जिससे थोड़े ही समयमें हमारा कल्याण हो सकता है। कहते हैं—

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥

(गीता २।४०)

जो आदमी अपना सर्वस्व और अपने आपको भी भगवान्‌को सच्चे दिलसे समर्पण कर देता है, उसका थोड़े ही समयमें उद्धार हो जाता है। अपने हृदयसे समझता है कि ये सब चीजें भगवान्‌की हैं, मैं भगवान्‌का और भगवान् मेरे। मेरे अधिकारमें स्त्री, पुत्र, रुपये, धन-ऐश्वर्य और मन-बुद्धि, इन्द्रियाँ, शरीरमें जो बल और शक्ति है, ये सब भगवान्‌को समर्पण करके भगवान्‌में लगा देनेपर उसकी सारी क्रिया ही भगवान्‌के लिये होती है। ऐसा भक्त वास्तवमें भगवान्‌का सच्चा भक्त है। भगवान् सच्चे भक्तोंका विश्वास करते हैं और उनका उद्धार करते हैं। जो आदमी निष्कामभावसे कर्म करता है उस क्रियाका कभी नाश नहीं होता। वह कायम रहती है और उसका उलटा परिणाम अर्थात् घाटा भी नहीं होता। उसको कोई बाध्य नहीं करता कि यह काम तुमको करना ही पड़ेगा और जो काम किया जाता है वह दामी (मूल्यवान्) होता है। इस प्रकार निष्कामकर्मका थोड़ा पालन भी महान् भयसे तार देता है। अर्थात् सब प्रकारके ऋणोंसे मुक्त होकर वह भगवान्‌को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार पचास वर्षोंमें जिस कार्यकी सिद्धि नहीं हुई वह छः महीनेमें हो सकती है।

साधक प्रातःकाल चार बजे उठकर शौच-स्नान करके एकान्तमें यदि यज्ञोपवीती हो तो संध्योपासन और गायत्रीका जप करे। अन्यथा अन्य सबके लिये—स्त्री हो, शूद्र हो, चाहे कोई भी हो भगवान्‌के नामका जप, स्वरूपका ध्यान और उनकी मानसिक पूजा करे और गीता-रामायणका अर्थसहित पाठ करे और व्यवहार-कालमें सबमें भगवद्‌बुद्धि करके सबकी सेवा करे, यह साधना बहुत उच्च कोटिकी है। प्रेममें मुग्ध होकर श्रद्धा-विश्वासपूर्वक गुप्तरूपसे मनसे जप करे और साथ ही भगवान्‌का ध्यान तथा भगवान्‌के गुण-प्रभाव, तत्त्व-रहस्य तथा स्वरूपका मनन करे और इस प्रकार स्तुति-प्रार्थना करे—'प्रभो! ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य-मण्डल, तारा इत्यादि सब आप ही हैं। आप ही परम ब्रह्म, परम धाम, परम पवित्र, शाश्वत, अविनाशी और सर्वव्यापी हैं। प्रभो! मैं सब साधनासे हीन हूँ, मैं महान् अपराधी हूँ तथा आपसे मैं यही चाहता हूँ कि आपके ऋणसे मैं मुक्त हो जाऊँ। इतना होनेपर भी मेरे ऊपर आपने बड़ी भारी दया की और कर रहे हैं। मेरा विश्वास करके आप मेरा परम हित कर रहे हैं। यह साधन तथा और जो कुछ भी होता है सब आपकी कृपासे होता है। आप ही आश्वासन देकर हिम्मत बँधा करके सब करवा लेते हो। बस, नित्य-निरन्तर आपका भजन-ध्यान बना रहे जिससे आपके ऋणसे मुक्त हो जाऊँ। आपमें मेरा प्रेम और परम श्रद्धा हो यही आपसे मैं चाहता हूँ।' यही हमारा असली धन है, भगवान्‌का काम करना अर्थात् सबको भगवान्‌के काममें लगाना। संसारमें भगवान्‌की भक्ति तथा उनके गुण-प्रभावके तत्त्वका खूब प्रचार करना और भगवान्‌के स्वरूपको याद कर-करके मुग्ध होना और भगवान्‌की सेवा करनेके समयमें भगवान्‌के नाम-रूपको नहीं भूलना। सबकी सेवा ही भगवान्‌की सेवा है। भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार सबकी तन-मन-धनसे निष्कामभावसे सेवा करना ही भगवान्‌का काम करना है।

छः घंटे रात्रिके सोनेके समयमें भगवान्‌के स्वरूप और उनके नामको याद करते हुए श्रद्धा-भक्तिपूर्वक स्तुति-प्रार्थना करते हुए शयन करना चाहिये। तो जो आज पचास वर्षोंमें नहीं हुआ वह छः महीनेमें हो सकता है। ऋणसे मुक्त होनेके लिये भगवान् स्वयं उसकी मदद करते हैं। भगवान्‌ने प्रतिज्ञा की है कि **'योगक्षेमं वहाम्यहम्'** (गीता ९।२२)। जो भक्त निष्कामभावसे मेरा भजन-चिन्तन करता है मैं उसका योगक्षेम वहन करता हूँ। मेरी प्राप्तिमें जो कमी है उसकी तो पूर्ति कर देता हूँ, जहाँतक पहुँच गये उसकी रक्षा करता हूँ।

आपको जो दो दृष्टान्त दिये उनमें एक तो अच्छे साधक पुरुषका और दूसरा दम्भी-पाखण्डीका। संसारमें भगवान्‌के

नाम या सत्संगकी ओटमें जो दम्भ-पाखण्ड करते हैं और कहलाते हैं सत्संगी तथा उस सत्संगसे मुक्ति एवं धन भी चाहते हैं, ऐसे लोगोंको मुक्ति मिलनी तो दूर रही, घोर दण्ड मिलता है। दूसरा जो ईमानदार अच्छी नीयतवाला होता है, उसको यहाँ भी आनन्द, वहाँ भी आनन्द। सब प्रकारसे भगवान् उसका विश्वास करते हैं, उसको अपने हृदयसे लगाते हैं, फिर उसका योगक्षेम वहन करते हैं। उसको संसार-सागरसे तार देते हैं। स्वयं भगवान् उसको वह बुद्धि देते हैं, जिससे उनकी प्राप्ति होती है। उसको सहारा दे करके सब प्रकारके ऋणोंसे—पितृ-ऋण, ऋषि-ऋण और देव-ऋणसे मुक्त कर देते हैं। पितरोंका उद्धार करके मानो सारी पृथ्वीका उसने दान दे दिया और सबकी सेवा करके मानो सारे भूतप्राणियोंसे वह मुक्त हो गया। भगवान्‌की कृपाके प्रभावसे उसमें अहंकार नहीं, ममता नहीं, अपना सारा जीवन, अपना तन-मन-धन सब भगवान्‌की चीज समझकर भगवान्‌को समर्पण कर देवे तो पहले उसने जो अपना समय बर्बाद किया, उससे उसपर भगवान्‌का ऋण तथा भगवान्‌की तरफसे अपराधी था, किंतु अब वह अपराध तथा ऋण समाप्त हो गया और उसका वह समय सार्थक हो गया। थोड़ेसे समयमें ही अपना कल्याण कर लिया। बाकीका जो समय है उसके लिये भगवान् कहते हैं—

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥

(गीता १८। ६९)

अर्जुन ! इस गीताशास्त्रका जो मेरे भक्तोंमें प्रचार करता है, उसके समान हमारा प्रिय कार्य करनेवाला संसारमें न तो कोई हुआ, न है और न भविष्यमें होगा। तो वह भगवान्‌का प्रियतम भक्त है। शेष समयमें जबतक जीवित रहे, तबतक हँस-हँस कर, नाच-नाच कर, गा-गा कर मुग्ध होता रहे तो उसके कामसे भगवान् मुग्ध हो जाते हैं और वह भगवान्‌की लीलाको देख-देखकर स्वयं मुग्ध होता है कि देखो, भगवान् कितने दयालु हैं, मदद कर-करके छः महीनेमें हमारा काम बना दिया। हमारी क्या सामर्थ्य कि हम सदाके लिये भगवान्‌के ऋणसे मुक्त हो जावें। अब तो वह भगवान्‌को देख-देखकर [illegible]

देख-देखकर मुग्ध होते हैं। वह देखता है कि ये सब हुआ भगवान्‌की कृपासे। भगवान्‌ने स्वयं ये सब बातें कीं, अब उसके आनन्दका ठिकाना नहीं, ऐसे भगवत्प्राप्त भक्तकी लीला-चरितको देख-देखकर भगवान् हँसते और मुग्ध होते हैं। भक्त और भगवान् एक-दूसरेको मुग्ध करते रहते हैं। भगवान्‌की सारी लीला भक्तको मुग्ध करनेके लिये होती है और भक्तको हर समय यह दीखता है कि जो कुछ हो रहा है, वह सब भगवान्‌की लीला हो रही है और भगवान् सबके हृदयमें विराजमान हो रहे हैं। भगवान् उनका प्रत्यक्ष दर्शन कर रहे हैं। भगवान्‌की चेष्टा भक्तके लिये और भक्तकी चेष्टा भगवान्‌के लिये—दोनोंकी चेष्टा परस्पर एक-दूसरेको मुग्ध करनेके लिये, आनन्द और प्रेमकी वृद्धिके लिये। या यूँ कहो कि प्रेम तो वहाँ पूर्ण है ही, आनन्द वहाँ पूर्ण है ही, क्या गुंजाइश है वहाँ यह कहनेके लिये। दोनों तरफ वहाँ कमी है ही नहीं, न भगवान्‌के लिये न भक्तके लिये। भगवान्‌का भक्त संसारमें जबतक जीता है, हँस-हँस करके, नाच-नाच करके उनके भगवद्भावोंका प्रचार करता रहता है। ऐसे पुरुषोंके संगमें हमलोग भी सम्मिलित हो जावें तो कितनी प्रसन्नताकी बात है। इस प्रकारके सत्संगकी ही यह महिमा है—

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

(मानस ५। ४)

हे तात ! स्वर्ग और मोक्षके सब सुखोंको तराजूके एक पलड़ेमें रखा जाय तो भी वे सब मिलकर दूसरे पलड़ेपर रखे हुए उस सुखके बराबर नहीं हो सकते जो क्षणमात्रके सत्संगसे होता है।

क्योंकि स्वर्ग तो कोई चीज ही नहीं है और मुक्ति तो वह दूसरोंको देता है। तो वह तो जीता हुआ ही मुक्त है अर्थात् जीवन्मुक्त है ही। इस प्रकारसे जो अपने समयको बिताता है उसका जीवन तो एक प्रकारसे अलौकिक है। उसके साथमें रहनेवाले भी उस समूहमें रहनेवाले आनन्दमें मुग्ध होते रहते हैं, वे यही चाहते हैं कि निरन्तर भगवान्‌की चर्चा होती रहे और इसीमें अपना जीवन बीतता रहे। न तो कोई भोग चाहते हैं और न मोक्ष चाहते हैं, क्योंकि ये सब इसके बराबरीमें कोई [illegible] न बड़ाई,

न आदर, न सत्कार, न स्तुति, न प्रार्थना—सब भावों और क्रियाओंसे ऊपर उठ जाता है और उसकी एक अलौकिक स्थिति हो जाती है। इसीलिये अपना जन्म है, ऐसा समझ करके अपना समय उपर्युक्त प्रकार बिताना चाहिये। (समाप्त)

चेतन और जगत्

(श्रीकृष्ण)

किसी भी वस्तुको लीजिये, उसके पृथक्करणपर उसमें पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश—ये पञ्चतत्त्व और चेतन प्रतीत होंगे। इन पञ्चमहाभूत और चेतनके अतिरिक्त किसी भी वस्तुमें और कुछ भी नहीं है। इनके बिना किसी भी वस्तुका अस्तित्व सम्भव नहीं। हाँ, ये पञ्चमहाभूत न्यूनाधिक प्रमाणमें अवश्य मालूम होते हैं। उदाहरणके लिये वृक्षका एक पत्ता लीजिये, उसमें जो जडांश है वह पृथिवीका अंश है, जो द्रवांश है वह जलका अंश है और जो चमक है वह तेजका अंश है—ये तीन तत्त्व तो प्रत्येक वस्तुमें स्पष्ट दिखलायी देते हैं। वायु और आकाश दृष्टिके विषय न होनेसे दिखायी नहीं देते, परंतु इनका अस्तित्व अवश्य रहता है। आकाशका धर्म है अवकाश देना और वायुका हलन-चलन होना। ये दोनों धर्म प्रत्येक वस्तुमें स्पष्ट दिखायी नहीं देते, तो भी रहते अवश्य हैं।

किसी भी जड-वस्तुको लीजिये, उसको यदि किसी विशेष बलसे दबाया जाय तो वह दब जाती है, इसीसे सिद्ध होता है कि उसमें आकाश है जिससे अवकाश मिला, और वायु है जिससे चलन हुआ। ऐसे तो पत्ता भी श्वास लेता है यह जानी हुई बात है। यानी पत्तेमें वायु दिखायी नहीं देती, परंतु है तो निश्चय ही। इसी तरह प्रत्येक वस्तुमें पञ्चमहाभूत मालूम होंगे। इन्हींके न्यूनाधिक अंशोंसे नाना प्रकारके संयोगोंद्वारा वैसे ही नाना प्रकारकी वस्तुएँ बनती हैं, जैसे शून्यसे लेकर नौ तकके दस अङ्कोंके नाना प्रकारके संयोगोंद्वारा नाना प्रकारके अङ्क बनते हैं। इन पञ्चमहाभूतोंके अतिरिक्त चेतन तो प्रत्येकमें अवश्य होना ही चाहिये। चेतन न हो तो मानो कुछ भी नहीं। चेतन सर्वव्याप्त है। प्राणियोंमें चेतनका आविर्भाव विशेष स्पष्ट होनेसे दिखायी देता है और जड वस्तुओंमें स्पष्ट न होनेसे दिखायी नहीं देता। इतना ही भेद है। वृक्षोंमें चेतन है यह आधुनिक भौतिक शास्त्रोंसे भी सिद्ध हो गया है। वैसे ही पर्वत, पत्थर, मिट्टी आदिमें भी वृद्धि होती है। उसमें [illegible] है, चेतन है, यह सिद्ध बात है। मिट्टीमें, गोबरमें सबमें चेतन है, योग्य संयोगोंद्वारा चेतन प्रकट होता है। उसमें असंख्यों जीव-जन्तु-कीड़े उत्पन्न होते हैं। मुर्देमें चेतन नहीं रहता ऐसा कहा जाता है, परंतु विचार करनेपर उसमें भी उसके अंश-अंशमें चेतन भरा हुआ दिखायी देता है। चेतनसे कुछ भी खाली नहीं है। मुर्देके शरीरके अंश-अंशमें योग्य संयोगोंसे असंख्यों कीड़े उत्पन्न होते हैं। वैसे ही सूखे अनाज, सूखी लकड़ी मुर्दा दीखती है, किंतु उसमें भी चेतन है, योग्य संयोगसे वहाँ भी जन्तु पैदा होते हैं, अर्थात् वस्तुतः चेतनरहित कोई भी वस्तु नहीं है। देखनेमें चाहे अचेतन हो, परंतु उसमें भी चेतनता रहती ही है। हाँ, उसका आविर्भाव वहाँ बहुत ही थोड़ा नहींके बराबर होता है, इसीलिये वह दिखायी नहीं देती।

चेतन सर्वव्यापक है, अणु-अणुमें व्याप्त है। प्रत्येक वस्तुमें इसी चेतनका सत्-चित् और आनन्दस्वरूप—अस्ति, भाति (प्रकाश) और प्रियत्वरूपसे रहता है। जिसे आप आकाश कहते हैं यानी जिसमें कोई वस्तु नहीं दीखती, खाली जगह दीखती है, वह आकाश भी अनेकों सूक्ष्म परमाणुओंसे भरा है, प्रत्येक सूक्ष्मतत्त्व पञ्चमहाभूत और चेतनके अतिरिक्त कोई दूसरी वस्तु नहीं है। चेतनसे कोई जगह खाली नहीं है, सब चेतनमय ही है। इसी चेतनको सत्, चित्, आनन्द या ब्रह्म कहते हैं। समस्त जगत् ब्रह्ममय है। ब्रह्म ही है। ब्रह्मके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जैसे प्रत्येक वस्तुमें पञ्चमहाभूत और चेतन हैं और कुछ भी नहीं है, वैसे ही प्रत्येक महाभूतमें चेतन ही है और कुछ नहीं है; पृथिवीका कारण जल है, अतः जल कारण है, पृथिवी कार्य है। जलसे पृथिवी उत्पन्न हुई है और जलमें ही लय हो जायगी। जैसे सोनेसे अलंकार बनते हैं और सोनेमें ही वे अलंकार लय हो जाते हैं, सोना कारण है, अलंकार कार्य है, कार्य-कारण अभिन्न होते हैं। कार्य कारणरूप ही होता है। कारणके बिना कार्यका अस्तित्व नहीं रहता, कार्य कारण ही होता है। सोना और अलंकार अभिन्न

हैं, अलंकार सोनारूप ही है, सोनेके बिना अलंकारका अस्तित्व नहीं है, अलंकार सोना ही है, वैसे ही पृथिवीका कारण जल है। इसीसे पृथिवी और जल अभिन्न हैं, पृथिवी जल ही है। जलका कारण तेज, तेजका कारण वायु, वायुका कारण आकाश और आकाशका कारण चेतन है। क्योंकि आकाश चेतनसे ही उत्पन्न है। आकाशसे वायु, वायुसे तेज, तेजसे जल और जलसे पृथिवी, इसीसे पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश—ये सब कार्य हैं और इन सबका मूल कारण चेतन है। अतएव चेतनके बिना महाभूत नहीं यानी जगत्में कोई भी वस्तु चेतनतारहित नहीं है। जो कुछ है, सब चेतन ब्रह्म ही है। ब्रह्म ही सत्य है। इसको छोड़कर बाकी सब नाम-रूप है। ब्रह्मको छोड़कर और कुछ भी त्रिकालबाधित अस्तित्वमें नहीं है।

ऊपरके विवेचनसे यह सिद्ध होता है कि जो कुछ है, ब्रह्म ही है। ब्रह्मके सिवा और कुछ नहीं है। जो कुछ दीखता है, उसके नाम-रूपके पीछे ब्रह्म ही है, नाम-रूप ही जगत् है। जगत्का अर्थ है जानेवाला यानी नाशवान्। जैसे सोना सत्य है और उसकी सृष्टि असत् है, परंतु मिथ्या होनेपर भी उस सृष्टिके अलंकार अपना-अपना विशेष कार्य करते हैं, वैसे ही जगत् मिथ्या होते हुए भी उसकी प्रत्येक वस्तु अपना-अपना कार्य करेगी ही। वस्तुका नाम-रूप विनाशी होनेसे क्या हुआ, वह जबतक है तबतक उसका कार्य होगा ही। कार्य-कारण स्वयं नाम-रूप-दृष्टिसे मिथ्या कहलाता है, जैसे सुवर्णके अतिरिक्त अलंकार नाम-रूपदृष्ट्या मिथ्या है। ऐसा होनेपर भी कार्य अलंकारके अपने-अपने विशेष कार्य होते हैं, जैसे पहुँची, अँगूठी, कंठी सबके अपने विशेष-विशेष कार्य हैं, वैसे ही पृथिवी, जल, तेज इत्यादि कार्य होनेसे, कारणके बिना मिथ्या होनेपर भी उन सबके अपने-अपने विशेष धर्म हैं। तेज मिथ्या है तो भी वह प्रकाश देगा, जलायेगा, वैसे ही जगत्की प्रत्येक वस्तु चेतनके बिना नाम-रूपदृष्ट्या मिथ्या होनेपर भी अपने-अपने धर्मवाली होती है और अपना-अपना कार्य करती है।

इस प्रकार जगत् नाम-रूपकी दृष्टिसे मिथ्या और उसमें व्याप्त कारणरूप ब्रह्मकी दृष्टिसे सत्य है। नाम-रूपसे दृष्टि हटा दें तो सब कुछ ब्रह्म ही है और यही सत्य तत्त्व है।

अमर उपहार दो

(सुश्री मधुरिमा सिंहजी)

छीन कर यह देह प्राणोंको अमर उपहार दो।
साँसकी पूरी कथाको अन्त-उपसंहार दो॥
वेदनामें अश्रु-मोती ही सदा चुनते रहे,
कामनाके मोह-धागे स्वप्न-से बुनते रहे।
भोगनेसे वासनाकी आग बढ़ती ही रही,
हम प्रणयकी तप्त साँसोंकी कथा सुनते रहे॥
प्राणधन ! पारस-परससे पाप सब संहार दो।
हो न जिससे मन वितृष्णित वह परम अभिसार दो॥
जीवकी काया उठाती मोह-माया-पालकी,
कौन सुनता है नहीं पदचाप अपने कालकी।
देहके पिंजरेमें सोनेकी चिरैया बंद है,
छोड़कर उड़ जायगी झरती ये पाती डालकी॥
थक गयी है साधना अपना अमर संसार दो।
मैं रहूँ तेरे हृदयमें बस यही अधिकार दो।

राम-नामका फल

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

दो भाई थे, पर दोनोंके स्वभावमें अन्तर था। बड़ा भाई साधुसेवी और भगवान्के भजनमें रुचि रखनेवाला था। दान-पुण्य भी करता था। सरलहृदय था। इसलिये कभी-कभी नकली साधुओंसे ठगा भी जाता था। छोटा भाई अच्छे स्वभावका था, परंतु व्यापारी-मस्तिष्कका था। उसे साधु-सेवा, भजन और दानके नामपर ठगाया जाना अच्छा नहीं लगता था और वह यही समझता था कि ये सब ठगोंके सिवा और कुछ नहीं हैं। अतः वह बड़े भाईके कार्योंसे सहमत नहीं था। उग्र विरोध तो नहीं करता था, पर समय-समयपर अपनी असम्मति प्रकट करता और असहयोग तो करता ही था।

बड़े भाईको इस बातका बड़ा दुःख था कि उसका छोटा भाई मानव-जीवनके वास्तविक लक्ष्य भगवान्की प्राप्तिके साधनमें रुचि न रखकर दुनियादारीमें ही पूरा लगा हुआ है। बड़े भाईकी अच्छी नीयत थी और वह अपने छोटे भाईको भगवान्की ओर लगा देखना चाहता था। वह समय-समयपर नम्रता और युक्तियोंसे समझाता था। दूसरे अच्छे लोगोंसे भी कहलवाता, उपदेश दिलवाता, पर छोटे भाईपर कोई प्रभाव नहीं था।

एक बार अपनी शिष्यमण्डलीसहित एक विरक्त महात्मा उनके शहरमें आये। बड़ा भाई साधुसेवी था ही। वह महात्माकी सेवामें उन्हें एक दिन भिक्षा करानेकी इच्छासे निमन्त्रण देने पहुँचा। वहाँ बात-ही-बातमें उसने अपने छोटे भाईकी स्थिति बतलायी। महात्माने पता नहीं क्या विचारकर उससे कहा कि 'तुम एक काम करना—जिस दिन तुम्हारा छोटा भाई घरमें रहे, उस दिन हमें भोजनके लिये बुलाना और हमलोगोंको ले जाने और लौटानेके समय एक बाजा साथ रखना। तुम्हारा छोटा भाई जो करे, उसे करने देना, शेष सारी व्यवस्था हम कर लेंगे।'

महात्माके आज्ञानुसार व्यवस्था हो गयी। बजते हुए बाजेके साथ महात्मा मण्डलीसहित आ रहे थे। घरमें उस दिन ज्यादा रसोई बनते देखकर और घरके समीप ही बाजेकी आवाज सुनकर छोटे भाईको कुछ संदेह हुआ और उसने बड़े भाईसे पूछा कि 'रसोई किस लिये बन रही है और अपने घरकी ओर बाजेके साथ कौन आ रहा है?' बड़े भाईने कहा—'एक पहुँचे हुए महात्मा अपनी शिष्यमण्डलीसहित यहाँ पधारे हैं और उन्हें अपने यहाँ भोजनके लिये बाजे-गाजेके साथ लाया जा रहा है। महात्मा भी पहुँचनेवाले ही हैं।' छोटे भाईको ये सब बातें बहुत बुरी लगीं। उसने कहा—'आप ये सब चीजें करते हैं, मुझे तो अच्छी नहीं लगतीं। आप बड़े हैं, आप जो चाहें सो करें। किंतु मैं यह सब देख नहीं सकता। इसलिये मैं कमरेके अंदर किवाड़ बंदकर बैठ जाता हूँ। आपके महात्मा खा-पीकर चले जायँगे, तब मैं बाहर निकलूँगा। इससे किसी प्रकारका कलह होनेसे घर बच जायगा।' यह कहकर उसने कमरेमें जाकर अंदरसे किवाड़ बंद कर लिये। महात्माजी आये और सारी बातोंको जानकर उन्होंने उस कमरेके बाहरकी साँकल लगा दी। भोजन सम्पन्न हुआ। तदनन्तर महात्माजीने अपनी सारी मण्डलीको बाजेके साथ लौटा दिया और स्वयं उस कमरेके दरवाजेके पास खड़े हो गये।

जब लौटते हुए बाजेकी अंदरसे आवाज सुनी, तब छोटे भाईने समझा कि अब सब लोग चले गये हैं। उसने अंदरकी साँकल हटाकर किवाड़ खोलने चाहे, पर वे बाहरसे बंद थे। उसने जोर लगाया। फिर बार-बार पुकारकर कहा—'बाहर किसने बंद कर दिया है, जल्दी खोलो।' महात्माने किवाड़ खोले और उसके बाहर निकलते ही बड़े जोरसे उसके हाथकी कलाईको पकड़ लिया। महात्मामें ब्रह्मचर्यका बल था। वह चेष्टा करके भी हाथ छुड़ा न सका। महात्माने हँसते हुए कहा—'भैया! हाथ छुड़ाना है तो मुँहसे 'राम' कहो।' उसने आवेशमें कहा—'मैं यह नाम नहीं लूँगा।' महात्मा बोले—'तो फिर हाथ नहीं छूटेगा।' क्रोध और बलका पूरा प्रयोग करनेपर भी जब वह हाथ नहीं छुड़ा सका, तब उसने कहा—'अच्छा, 'राम'। छोड़ो हाथ जल्दी और भागो यहाँसे।' महात्मा मुसकराते हुए यह कहकर बाहर निकल गये कि—'तुमने 'राम' कहा सो तो बड़ा अच्छा किया, पर मेरी बात याद रखना। इस 'राम'-नामको किसी भी कीमतपर कभी बेचना नहीं।'

यह घटना तो हो गयी, पर कोई विशेष अन्तर नहीं आया। समयपर बड़े भाईकी मृत्यु हो गयी और उसके कुछ दिन बाद छोटे भाईकी भी मृत्यु हो गयी। विषयवासना और विषयकामनावाले लोग विवेकभ्रष्ट हो जाते हैं और जाने-अनजाने छोटे-बड़े पाप करते रहते हैं। पापका फल तो भोगना ही पड़ता है, मरनेके अनन्तर छोटे भाईकी आत्माको यमलोक ले जाया गया और वहाँ कर्मका हिसाब-किताब देखकर बताया गया कि विषय-वासनावश इस जीवने मनुष्य-योनिमें केवल साधु-अवज्ञा और भजनका विरोध ही नहीं किया और भी बड़े-बड़े पाप किये हैं, पर इसके द्वारा एक बड़ा भारी महान् कार्य हुआ है, इसकी जीभसे एक महात्माके सम्मुख एक बार जबरदस्ती राम-नामका उच्चारण हुआ है।

यमराजने यह सुनकर मन-ही-मन उस एक बार राम-नामका उच्चारण करनेवालेके प्रति श्रद्धा प्रकट की और कहा—'इस राम-नामके बदलेमें जो कुछ चाहो सो ले लो। उसके बाद तुम्हें पापोंका फल भोगना पड़ेगा।' उसको महात्माकी बात याद आ गयी। उसने यमराजसे कहा—'मैं राम-नामको बेचना नहीं चाहता, पर उसका जो कुछ भी मूल्य होता हो, वह आप मुझको दे दें।' राम-नामका मूल्य आँकनेमें यमराज असमर्थ थे। अतएव उन्होंने कहा—'देवराज इन्द्रके पास चलकर उनसे पूछना है कि राम-नामका मूल्य क्या होता है।' उस जीवने कहा—'मैं यों नहीं जाता। मेरे लिये एक पालकी मँगायी जाय और उसमें कहारोंके साथ आप भी लगें।' उसने यह सोचा कि राम-नामका मूल्य जब ये नहीं बता सकते, तब अवश्य ही वह बहुत बड़ी चीज है और इसकी परीक्षा इसीसे हो जायगी कि ये पालकी ढोनेवाले कहार बनते हैं या नहीं। उसकी बात सुनकर यमराज सकुचाये तो सही पर सारे पापोंका तुरंत नाश कर देनेवाले और मन-बुद्धिसे अतीत फलदाता भगवन्नामके लेनेवालेकी पालकी उठाना अपने लिये सौभाग्य समझकर वे पालकीमें लग गये।

पालकी स्वर्ग पहुँची। देवराज इन्द्रने स्वागत किया और यमराजसे सारी बात जानकर कहा—'मैं भी राम-नामका मूल्य नहीं जानता। ब्रह्माजीके पास चलना चाहिये।' उस जीवने निवेदन किया—'यमराजके साथ आप भी पालकीमें लगें तो मैं चलूँ।' इन्द्रने उसकी बात मान ली और यमराजके साथ पालकीमें वे भी जुत गये। ब्रह्मलोक पहुँचे और ब्रह्माने भी राम-नामका मूल्य आँकनेमें अपनेको असमर्थ पाया और उसी जीवके कहनेसे वे भी पालकीमें जुत गये। उनकी राय भगवान् शंकरके पास जानेकी रही। इसलिये वे पालकी लेकर कैलास पहुँचे। भगवान् शंकरने ब्रह्मा, इन्द्र और यमराजको पालकी उठाये आते देखकर बड़ा आश्चर्य प्रकट किया। पूछनेपर सारी बातें उन्हें बतायी गयीं। शंकरजी बोले—'भाई! मैं तो रात-दिन राम-नाम जपता हूँ, उसका मूल्य आँकनेकी मेरे मनमें कभी कल्पना ही नहीं आती। चलो वैकुण्ठ, ऐसे महाभाग्यवान् जीवकी पालकीमें मैं भी लगता हूँ। वैकुण्ठमें भगवान् नारायण ही कुछ बता सकेंगे।' अब पालकीमें एक ओर यमराज और देवराज लगे हैं और दूसरी ओर ब्रह्मा और शंकर कहार बने लगे हैं। पालकी वैकुण्ठ पहुँची। चारों महान् देवताओंको पालकी उठाये आते देखकर भगवान् विष्णु हँस पड़े और पालकी वहाँ दिव्य भूमिपर रख दी गयी। भगवान्ने आदरपूर्वक सबोंको बैठाया। भगवान् विष्णुने कहा—'आपलोग पालकीमें बैठे हुए इस महाभाग जीवात्माको उठाकर मेरी गोदमें बैठा दीजिये।' देवताओंने वैसा ही किया। तदनन्तर भगवान् विष्णुके पूछनेपर भगवान् शंकरने कहा—'इसने एक बार परिस्थितिसे बाध्य होकर 'राम' नाम लिया था। राम-नामका मूल्य इसने जानना चाहा, पर हमलोगोंमेंसे किसीने भी राम-नामका मूल्य बतानेमें अपनेको समर्थ नहीं पाया। इसलिये हमलोग इस जीवके इच्छानुसार पालकीमें लगकर आपकी सेवामें उपस्थित हुए हैं। अब आप ही बताइये कि राम-नामका मूल्य क्या होना चाहिये।' भगवान् विष्णुने मुस्कराते हुए कहा—'आप-सरीखे महान् देव इसकी पालकी ढोकर यहाँतक लाये और आपलोगोंने इसे मेरी गोदमें बैठाया। अब यह मेरी गोदका नित्य अधिकारी हो गया, राम-नामका पूरा मूल्य तो नहीं बताया जा सकता, पर आप इसीसे मूल्यका कुछ अनुमान लगा सकते हैं। आपलोग अब लौट जाइये।' भगवान् विष्णुके द्वारा, लिये हुए एक बार राम-नामका इस प्रकार महान् मूल्याभास पाकर शंकरादि देवता लौट गये। इस घटनामें भगवन्नामकी महिमाका जो वर्णन आया है, वह वास्तवमें यथार्थ लगता है। घटना चाहे कल्पित हो, पर महिमा तो सत्य है ही। [illegible] गाई।'

मोक्षका सबसे सुलभ साधन—प्रपत्ति

(प्राचार्य डॉ॰ श्रीजयनारायणजी मल्लिक)

परम पुरुषार्थ मोक्षके पाँच भेद बतलाये गये हैं— सायुज्य, सामीप्य, सालोक्य, सारूप्य और सार्ष्टि। इनमें सायुज्यको ब्रह्मनिर्वाण या कैवल्य भी कहते हैं। इसे छोड़कर शेष चारोंके लिये भगवत्प्राप्ति या मोक्षका सर्वोत्तम एवं सबसे सुलभ साधन प्रपत्ति या भगवान्‌की शरणागति है। यदि प्रपन्न चाहे तो विशुद्ध ज्ञान प्राप्तकर कैवल्य भी प्राप्त कर सकता है। इस संसारमें जड और चेतन, शरीर और जीवात्मा, चित् और अचित्‌का समन्वित रूप ही जीवन है। संसारमें चित् (चैतन्य जीव) और अचित् (चैतन्यहीन जड पदार्थ) तथा ईश्वर—ये तीनों तत्त्व सत्य और नित्य हैं, ईश्वर तो सदैव सृष्टि और प्रलयमें भी एक समान निर्विकार सूक्ष्मरूपमें वर्तमान रहते हैं। विकार और परिवर्तन आता है केवल चित् और अचित्‌से बने संसार या प्रकृति-मण्डल या माया-मण्डलमें, जहाँ जन्म-मरण, उत्पत्ति और नाशका कर्मचक्र चलता रहता है।

उपनिषदोंने केवल एक पदार्थ माना है, केवल ब्रह्मको— **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन।'** 'संसारमें सब कुछ ब्रह्म ही है, ब्रह्मके अतिरिक्त और कोई पदार्थ नहीं' यह महावाक्य है। इस सम्बन्धमें शंकराचार्यके अद्वैतवादमें और रामानुजाचार्यके विशिष्टाद्वैतवादमें अधिक अन्तर नहीं, केवल दृष्टिकोणका अन्तर है। आचार्य शंकरने देखा कि यदि सब कुछ ब्रह्म ही है तो फिर संसार क्या है ? यह अवश्य मिथ्या है, क्योंकि श्रुति तो गलत नहीं कह सकती। अतः आचार्यको कहना पड़ा कि **'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।'** रामानुजाचार्यने कहा कि ब्रह्मके अतिरिक्त दूसरा पदार्थ है कहाँ ? पर वह ब्रह्म निर्विशेष नहीं है, चित् और अचित्‌से विशिष्ट है और सृष्टि तथा प्रलय, सर्वदा चित् और अचित्‌से विशिष्ट रहता है। चित्‌में ब्रह्म और जीव दोनों हैं।

अचित् तत्त्वके तीन भेद हैं, अविद्या या त्रिगुणात्मिका प्रकृति, काल तथा विद्या या शुद्ध सत्त्व, जो निर्विकार और ज्योतिःस्वरूप है। शुद्ध सत्त्वमें अन्धकार, गंदगी, अश्लीलता और विकार नहीं है। प्राकृतिक संसारमें केवल काल और प्रकृति हैं तथा परमपदमें केवल शुद्ध सत्त्व। वैकुण्ठमें सभी मुक्तात्मा[illegible] शुद्ध सत्त्वके बने रहते हैं, अतः वहाँ न तो शारीरिक विकार हैं और न मानसिक। वहाँ आनन्दानुभूति तथा शाश्वत भगवत्कैंकर्यमें समय बीतता है। किंतु विशुद्ध श्रद्धालु और धर्मज्ञानीके लिये भगवद्‌गुणगान और विशुद्ध ज्ञानके कारण सर्वत्र ही ब्रह्मनिर्वाण या सर्वोत्तम वैकुण्ठकी प्राप्ति हो जाती है। कहा भी गया है—

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः॥

(श्रीमद्भा॰ १।१८।१३)

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

भगवान्‌के समीप पहुँचनेके लिये कुछ प्रारम्भिक नियमोंका पालन आवश्यक है। ये नियम इस प्रकार हैं—

१-सदैव भगवान्‌का स्मरण करते हुए भगवत्कैंकर्यमें लगे रहना।

२-तृष्णा ही दुःखकी जड़ है, अतः तृष्णाका सर्वथा त्याग करना।

३-साधु वही है, जो दूसरोंकी पीड़ाको समझे और उसे दूर करनेकी चेष्टा करे।

४-अभिमान नहीं करना, क्योंकि अभिमान आत्माका नाश कर देता है। किसीसे वैमनस्य और द्वेष नहीं रखना, क्योंकि द्वेष और वैमनस्यके कारण मनुष्य अपना बहुत-सा समय, धन और शारीरिक शक्ति भी क्षीण कर डालता है।

५-सदा मीठी और सच्ची बातें बोलना, बुरे शब्द मुँहसे कभी नहीं निकालना।

६-यथासाध्य भगवत्स्वरूप संसारका कल्याण करना। निःसहायकी सहायता करना, पीड़ितोंकी पीड़ा दूर करना और पापियोंको सन्मार्गपर लाना सबसे बड़ा धर्म है तथा अपने स्वार्थके लिये दूसरोंके जीवनको दुःखी बनाना एवं दूसरोंको पाप और पतनकी ओर धकेल देना सबसे बड़ा अधर्म है।

संसार ही ब्रह्मज्योतिसे ओतप्रोत है, साधारणतः लोग सोचते हैं कि मन्दिरका मार्जन, फूल-तुलसी तोड़ना, चन्दन, धूप-दीप-आरती, रसोई-भोग—ये ही भगवत्कैंकर्य हैं। ये तो

भगवत्कैंकर्य हैं ही, पर ये केवल अर्चावताररूपके कैंकर्य हैं। भगवान्‌के सर्वोत्कृष्ट रूप मायामण्डलसे परे परमपदमें वर्तमान ज्योतिःस्वरूप परब्रह्म परमेश्वर श्रीमन्नारायण भगवान् हैं, जो हमारी इन्द्रियोंके अगोचर हैं। उनका कैंकर्य है पवित्र अन्तःकरणसे उनका चिन्तन, ध्यान, स्मरण, शरणागतिकी भावना, उनके श्रीचरणोंमें अखण्ड अनुराग और स्नेह, उनके दिव्य सौन्दर्य और माधुर्यमें एकाकार हो जाना, उनके श्रीचरणोंमें आत्म-समर्पण और सदैव उनके रूप-गुणका अनुसंधान करना।

भगवत्कैंकर्यके विविध स्वरूप हैं। जिनमें कुछ संक्षिप्त रूपमें इस प्रकार हैं—

शेषशायी भगवान् वासुदेवका कैंकर्य स्तोत्र, संध्या, गायत्री, भजन-कीर्तन तथा उनका लीला-चिन्तन है। गायत्री आर्योंकी प्राचीनतम प्रार्थना है। अन्तर्यामी भगवान् सर्वत्र, सभी प्राणियोंमें वर्तमान हैं। ऐसा कोई भी एकान्त स्थल नहीं है, जहाँ मनुष्य छिपकर पाप कर सके। अन्तर्यामी भगवान् कहीं भी, कभी भी, किसी भी प्रकारके किये हुए पापोंको देख ही लेते हैं। अतः अपने मन, हृदय और अन्तःकरणको स्वच्छ तथा पवित्र रखना हमारा कर्तव्य है। गंदे तथा अश्लील विचारोंसे, भोग-विषयोंके अनवरत चिन्तनसे तथा दूसरोंके अन्तःकरणको कष्ट पहुँचाने एवं दूसरोंके प्रति अनिष्ट-चिन्तनसे अपना अन्तःकरण दूषित, मलिन और कलुषित हो जाता है। अतः इससे बचना चाहिये; क्योंकि शरीर परमात्माका मन्दिर माना गया है। इसलिये मानवताकी सेवा भगवत्कैंकर्य है। निःसहायोंकी सहायता करना, पथ-भ्रष्टोंको मार्ग दिखाना तथा न्याय और धर्मकी रक्षा भगवत्कैंकर्य है।

कर्मयोगीको निर्लिप्त, निष्काम और अनासक्त होना आवश्यक है। क्योंकि गीतामें आया है—

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते॥

(१८।१७)

ज्ञानयोग तो कर्मयोगसे भी कठिन है। ज्ञानयोगीके लिये कहा गया है कि मनुष्य विषयभोगोंका चिन्तन ही नहीं करे, क्योंकि—

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते
सङ्गात् सञ्जायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति॥

(गीता २।६२-६३)

सारांश यह कि येनकेनप्रकारेण मोक्ष-प्राप्तिका सुलभ साधन समस्त प्राणियोंकी निष्कामभावसे सेवा करते हुए भगवच्छरणापन्न होना है।

मोक्ष-प्राप्तिके लिये स्थितप्रज्ञ होना परमावश्यक है। भगवान् कहते हैं—

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥

(गीता २।५५)

अर्थात् जब योगी मनमें उठनेवाली सभी इच्छाओंका दमन कर देता है, अपने ही द्वारा अपने ही आत्मामें लीन और संतुष्ट रहता है, तब वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है। ऐसी स्थितिमें रहना अत्यन्त कठिन है। अस्तु;

भगवत्प्राप्तिके लिये भक्ति सर्वाधिक उपयोगी है, इसमें कोई कठिनता नहीं है। साक्षात् भगवान् ही कहते हैं—

सुलभ सुखद मारग यह भाई। भगति मोरि पुरान श्रुति गाई॥

× × ×

भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी। बिनु सत्संग न पावहिं प्रानी॥

अर्जुनने भी गीताके बारहवें अध्यायमें भगवान् श्रीकृष्णसे प्रश्न किया था कि भक्ति और ज्ञान—इन दोनोंमें श्रेष्ठ और सुगम कौन है? तो भगवान् श्रीकृष्णने भक्तिके पक्षमें अपना निर्णय दिया था—

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः॥

जब परमात्माको हम प्यार करने लग जायँगे, तब फिर उनके ध्यानमें, उनके चिन्तनमें, उनकी सेवामें आनन्दका रस मिलेगा। फिर उनका साक्षात्कार सदैव हुआ करेगा। तब हृदयकी गाँठ खुल जायगी, सारे संदेह मिट जायँगे और कर्म-संस्कार क्षीण हो जायगा। मुण्डकोपनिषद्‌में कहा गया है कि—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

प्रपत्तिमें कर्म, ज्ञान और भक्ति—इन तीनोंका समन्वय है। प्रपत्तिसे हम भगवान्‌के बहुत समीप चले जाते हैं।

प्रपत्तिका मार्ग बहुत प्राचीन है। शुक्ल यजुर्वेदकी एकायन-शाखामें प्रपत्तिकी रूप-रेखा दी हुई है। पाञ्चरात्र ग्रन्थोंमें प्रपत्तिका साङ्गोपाङ्ग वर्णन मिलता है। कुछ प्राचीन आल्वार संतोंके चार हजार द्राविड़ दिव्य प्रबन्धोंमें प्रपत्तिका निखरा हुआ रूप दृष्टिगोचर होता है। श्रुति भी कहती है—

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तँ हि देवमात्मबुद्धिप्रकाशं
मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ६। १८)

जिन श्रीमन्नारायण भगवान्‌ने सृष्टिके प्रारम्भमें अपने-आपसे ब्रह्माका सर्जन किया और जिन्होंने उन्हें ज्ञानके प्रसारके लिये वेद दिये, जिनकी कृपासे अविद्या, अन्धकार, वासना और बुद्धिके आवरण नष्ट हो जाते हैं, उन आत्मा और बुद्धिको निर्मल पवित्र तथा प्रसन्न करनेवाले परब्रह्म परमात्माकी शरणमें मैं दीन, निःसहाय और अकिंचन होकर अनन्य-भावसे अपने-आपको समर्पित करता हूँ। मोक्षकी इच्छा होनेपर ही मनुष्य शरणागत होता है। भगवान्‌के श्रीचरणोंमें आत्म-समर्पण कर देनेसे रक्षाका दायित्व भगवान्‌का हो जाता है।

वाल्मीकीय रामायणमें भी विभीषणकी शरणागतिके समय स्वयं भगवान् राम कहते हैं—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

(वा॰रा॰ यु॰ १८। ३३)

भगवान्‌की प्रतिज्ञा है कि 'जो व्यक्ति केवल एक बार मेरे शरणागत (प्रपन्न) हो जाता है, अपने-आपको मेरे चरणोंमें सौंप देता है और कह उठता है कि 'भगवन्! मैं आपका ही हूँ', उसे सभी भौतिक पदार्थोंसे, सभी प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ, यह मेरा व्रत है।'

विभीषण रावणसे तिरस्कृत होकर पतित-पावन, अशरण-शरण भगवान् रामकी शरणमें आ रहे हैं। उनके मनमें दृढ़ विश्वास है कि भगवान् तो रक्षा करेंगे ही। '**रक्षिष्यतीति विश्वासः**।' वे सोचते आ रहे हैं—

देखिहउँ जाइ चरन जलजाता। अरुन मृदुल सेवक सुखदाता॥
जे पद परसि तरी रिषिनारी। दंडक कानन पावनकारी॥
जे पद जनकसुताँ उर लाए। कपट कुरंग संग धर धाए॥
हर उर सर सरोज पद जेई। अहोभाग्य मैं देखिहउँ तेई॥
जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरतु रहे मन लाइ।
ते पद आजु बिलोकिहउँ इन्ह नयनन्हि अब जाइ॥

एक बार भी जो निश्छल-भावसे मन, वचन और कर्मसे भगवान्‌की शरण ग्रहण कर लेता है, भगवान् उसकी रक्षाका भार स्वयं ले लेते हैं। उसे और उपायोंकी अपेक्षा नहीं रहती। कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोगके सारे साधनोंको वह अपने प्रियतम परब्रह्म परमेश्वरकी सेवा और आदेश समझकर करता जाता है। भगवान्‌की प्राप्तिमें भगवान् ही उपाय हैं। अपने बलपर मोक्ष नहीं मिल सकता। अतः सबसे सुन्दर यही है कि अपने-आपको हम भगवान्‌के श्रीचरणोंमें समर्पित कर दें। गीताके अन्तमें सारांशके रूपमें भगवान् भी स्वयं यही कहते हैं—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

'हे अर्जुन! सभी धर्मोंको अर्थात् मोक्षके सभी कठोर साधनोंको अर्थात् कर्ममार्ग, ज्ञानमार्ग आदि सभी उपायोंको छोड़कर केवल मेरी ही शरणमें आ जाओ, मैं तुमको सभी पापोंसे मुक्त कर दूँगा। शोक मत करो।'

इस विषयमें भगवान्‌की प्रतिज्ञा है—

कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

(गीता ९। ३१)

शरणागत—प्रपन्नोंके लिये भगवान्‌ने स्वयं गीतामें कहा है—

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।

(१२। ७)

श्रीरामचरितमानसमें भी कहा गया है—

सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी। मम पन सरनागत भयहारी॥
कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा ॥
सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँधि बरि डोरी ॥
समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहिं मन माहीं ॥
अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदयँ बसइ धन जैसें ॥

× × ×

जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही ॥
तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना ॥

प्रपन्नका तो सारा भार भगवान् ले ही लेते हैं, पर प्रपन्नका भी कर्तव्य होता है—जीवनभर प्रभुकी प्रसन्नताके लिये सारे कर्मोंको भगवत्कैंकर्य समझकर करते जाना। शरणागतिके बाद पत्नीकी तरह प्रपन्नका भी एक ही कर्तव्य रह जाता है—

'आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्।'

परमात्माके अनुकूल कार्योंको करना और उनके प्रतिकूल कार्योंको नहीं करना। जिस कार्यसे वे प्रसन्न हों, जो कार्य उनको रुचे, जो उनकी इच्छाके अनुसार हो अर्थात् वे अच्छे काम प्रपन्न करे और जिस कार्यसे परमात्मा नाराज हो जायँ, जो उनकी इच्छाके विरुद्ध हो, वैसा कार्य अर्थात् बुरे कार्य प्रपन्न नहीं करे। जैसे पत्नी पतिके अनुकूल अपना जीवन बना डालती है, पतिकी इच्छा ही उसकी इच्छा होती है, उसी प्रकार प्रपन्नको भी परमात्माके अनुकूल अपना जीवन बनाना चाहिये। परमात्माकी इच्छा ही उसकी इच्छा होनी चाहिये। मनुष्य दुनियासे कुछ लेता है और दुनियाको कुछ देता है। लेता है 'आहार' और देता है 'आचरण (कर्म)'। दोनों पवित्र और संतुलित होने चाहिये। प्रपन्नके लिये भगवान्ने कह दिया है—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥

(गीता ९। २७)

'जो कुछ करो, जो कुछ खाओ, सब मुझे अर्पित कर दो।' हमें अपने सभी भोज्य पदार्थ और सारे आचरण या कर्म परमात्माको समर्पित कर देने हैं। अतः हम वही भोजन या भोग ले सकते हैं और वही कर्म कर सकते हैं, जो परमात्माको अर्पित होनेके योग्य हों। अपवित्र भोजन और अनुचित तथा कलुषित कर्म तो परमात्माको समर्पित होंगे नहीं। परमात्मा उसे स्वीकार ही नहीं करेंगे। अतः प्रपन्नका आहार और आचरण स्वतः ही पवित्र रहना चाहिये।

पत्नी कितनी भी सती-साध्वी क्यों न रहे, किंतु पतिके समीप अपनेको अनन्त अपराधिनी ही समझती है, उसी प्रकार प्रपन्नका भी नीचानुसंधान आवश्यक है। भगवान्के समक्ष प्रपन्न अपनेको अनन्त अपराधी समझे।

प्रपन्न अपनेको अनन्त अपराधी समझकर भगवान्से कहता है—

अपराधसहस्रभाजनं पतितं भीमभवार्णवोदरे।
अगतिं शरणागतं हरे कृपया केवलमात्मसात् कुरु ॥

(आलवन्दारस्तोत्र)

'हे भगवन्! मैंने जीवनमें असंख्य अपराध किये हैं, मैं हजारों अपराधका पात्र हूँ। भयंकर भव-सागरमें (संसाररूपी समुद्रके उदरमें) गिरा हुआ हूँ। मेरे उद्धारका कोई उपाय नहीं है, मैं आपहीको अपना उपाय मानकर आपकी शरणमें आ गया हूँ, कृपया मेरी रक्षा करें और मुझे भोगवादी संसारसे निकालकर अपनेमें लीन कर लें।'

यह निश्चित है कि प्रपन्न कभी-न-कभी मोक्ष और परमपदको प्राप्त करेंगे ही। प्रपन्नके रक्षक, स्वामी और उपाय तो भगवान् ही हैं। भगवान्की शरणागति ही एकमात्र प्रपन्नोंका साधन है। उन्हें केवल एकमात्र भगवान्को पकड़ना है, इधर-उधर भटकना नहीं है। जीव स्वभावतः भगवान्का शेष और भगवद्दास है। प्रपन्नको केवल अखण्ड श्रद्धा, विश्वास और प्रेम भगवान्में रखना है, सर्वथा और सर्वदा भगवान्के अनुकूल आचरण रखना है और भगवान्के प्रतिकूल कभी नहीं जाना है। भगवान्की प्रतिज्ञा है कि—

यदि वातादिदोषेण मद्भक्तो मां हि विस्मरेत्।
अहं स्मरामि मद्भक्तं नयामि परमां गतिम् ॥

(वाराहपुराण)

यदि मरनेके समय वायुके प्रकोपसे बेहोशीकी अवस्थामें प्रपन्न मेरा भक्त मुझे भूल भी जाय, फिर भी मैं उसे याद रखता हूँ और उसे अपने परम धाममें ले आता हूँ।

प्रपत्ति भगवत्प्राप्तिके लिये सभी प्रकारके साधकोंका मुख्य साधन है।

साधकोंके प्रति—

विवेककी जागृति

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

मानव-शरीरकी महिमा विवेकके कारण ही है। विवेक प्राणिमात्रमें है; परंतु जिससे परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति कर सकें, ऐसा (सत्-असत्, कर्तव्य-अकर्तव्यका) विवेक मनुष्यमें ही है। यह विवेक कर्मोंका फल नहीं है, प्रत्युत भगवत्प्रदत्त है। यह बुद्धिमें आता है, बुद्धिका गुण नहीं है। अतः बुद्धि तो कर्मानुसारिणी होती है, पर विवेक कर्मानुसारी नहीं होता। अगर विवेकको पुण्य-कर्मोंका फल मानें तो यह शङ्का पैदा होगी कि बिना विवेकके पुण्यकर्म कैसे हुए? कारण कि ये पुण्यकर्म हैं और ये पापकर्म हैं—ऐसा विवेक पहले होनेपर ही मनुष्य पापोंका त्याग करके पुण्यकर्म करता है। अतः विवेक पुण्यकर्मोंका फल नहीं है, प्रत्युत यह पुण्यकर्मोंका कारण और अनादि है।

लौकिक पदार्थोंकी प्राप्ति तो क्रियासे होती है, पर परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति विवेकसे होती है। मुक्त करनेकी शक्ति विवेकमें है, क्रियामें नहीं। अगर मनुष्यमें विवेककी प्रधानता हो तो वह प्रत्येक देशमें, प्रत्येक कालमें, प्रत्येक अवस्थामें, प्रत्येक परिस्थितिमें परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति कर सकता है। कारण कि परमात्मतत्त्वसे कभी किसीका वियोग नहीं है। अतः मनुष्यका खास काम है—प्राप्त विवेकका आदर करना, उसको महत्त्व देना। विवेकका आदर करनेसे वह विवेक ही बढ़कर तत्त्वबोधमें परिणत हो जाता है।

प्रश्न—अन्तःकरणको शुद्ध किये बिना विवेकका आदर कैसे होगा?

उत्तर—विवेक अन्तःकरणकी शुद्धिके आश्रित नहीं है, प्रत्युत अन्तःकरणकी शुद्धि विवेकके आश्रित है। विवेक अनादि तथा अनन्त है और अन्तःकरणकी अशुद्धि सादि और सान्त है। विवेक असीम है और अशुद्धि सीमित है। विवेक स्वतःसिद्ध है, अशुद्धि स्वतःसिद्ध नहीं है। विवेक नित्य है, अशुद्धि अनित्य है। नित्यको अनित्य कैसे ढक सकता है? जडताका महत्त्व ही अन्तःकरणको अशुद्ध करनेवाली चीज है। अतः विवेकको महत्त्व देनेसे अन्तःकरण स्वतः शुद्ध हो जाता है।

शुद्ध करनेसे अन्तःकरण शुद्ध नहीं होता। कारण कि शुद्ध करनेसे अन्तःकरणके साथ सम्बन्ध बना रहता है। जबतक 'मेरा अन्तःकरण शुद्ध हो जाय'—यह भाव रहेगा, तबतक अन्तःकरणकी शुद्धि नहीं हो सकती, क्योंकि ममता ही अशुद्धिका कारण है—***'ममता मल जरि जाइ'*** (मानस ७। ११७ क)। इसलिये गीताने अन्तःकरणके साथ ममता न रखनेकी बात कही है; जैसे—

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये॥

(गीता ५। ११)

'कर्मयोगी आसक्तिका त्याग करके अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये केवल अर्थात् ममतारहित इन्द्रियाँ-शरीर-मन-बुद्धिके द्वारा कर्म करते हैं।' कारण कि ममता-आसक्ति रखनेसे कर्म होते हैं, कर्मयोग नहीं होता।

विवेकके बिना केवल क्रियासे अन्तःकरणकी शुद्धि नहीं होती*। शक्ति विवेकमें है, क्रियामें नहीं। क्रिया करनेमें करणकी मुख्यता रहेगी तो करणका आदर होगा। करणका आदर (महत्त्व) ही अन्तःकरणकी अशुद्धि है।

अन्तःकरणकी अशुद्धि वास्तवमें कर्ताकी अशुद्धि है; क्योंकि कर्ताका दोष ही करणमें आता है। जैसे, मनुष्य चोरी करनेसे चोर नहीं बनता, प्रत्युत चोर बनकर चोरी करता है। चोरी करनेसे उसका चोरपना दृढ़ होता है। अगर कर्ताकी नीयत शुद्ध हो तो वह चोरी नहीं कर सकता। अतः करणको शुद्ध करनेकी उतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी कर्ताको शुद्ध

* अन्तःकरणकी शुद्धि क्रियासे नहीं होती, प्रत्युत भाव और विवेकसे होती है। इसलिये कर्मयोगमें निष्कामभावसे, ज्ञानयोगमें विवेकसे और भक्तियोगमें प्रेमभावसे अन्तःकरण स्वतः शुद्ध हो जाता है। सकामभावसे की गयी क्रियासे भी अन्तःकरणमें एक तरहकी शुद्धि आती है, पर वह शुद्धि उस क्रियाका फल भोगनेमें ही काम आती है, पारमार्थिक उन्नतिमें काम नहीं आती।

होनेकी आवश्यकता है। अगर करणको शुद्ध करेंगे तो परिणाममें क्रिया शुद्ध होगी, कर्ता कैसे शुद्ध होगा ? जैसे, कलम बढ़िया होगी तो लेखन-कार्य बढ़िया होगा, लेखक कैसे बढ़िया हो जायगा ? कर्ता शुद्ध होता है—अन्तःकरणसे सम्बन्ध-विच्छेद होनेपर और अन्तःकरणसे सम्बन्ध-विच्छेद होता है—विवेकका आदर करनेसे।

एक मार्मिक बात है कि अन्तःकरण अशुद्ध होनेपर भी विवेक जाग्रत् हो सकता है। इसीलिये गीतामें आया है कि पापी-से-पापी और दुराचारी-से-दुराचारी मनुष्य भी ज्ञान और भक्ति प्राप्त कर सकता है* । तात्पर्य है कि अपने कल्याणका दृढ़ उद्देश्य हो जाय तो पूर्वकृत पाप विवेककी जागृतिमें बाधक नहीं हो सकते। पाप तभी बाधक हो सकते हैं, जब विवेक कर्मोंका फल हो। परंतु विवेक कर्मोंका फल है ही नहीं। कर्मोंके साथ विवेकका सम्बन्ध है ही नहीं। अतः विवेकका पापोंसे विरोध नहीं है। इसलिये साधकको चाहिये कि वह अपने विवेकको जाग्रत् करे।

प्रश्न—विवेक कैसे जाग्रत् होता है ?

उत्तर—विवेक दो चीजोंसे जाग्रत् होता है—सत्संगसे† और दुःख (आफत) से। सत्संग परमात्मामें लगाता है और दुःख संसारसे हटाता है। परमात्मामें लगना भी योग है **'समत्वं योग उच्यते'** (गीता २। ४८) और संसारसे हटना भी योग है **'तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।'** (गीता ६। २३)।

रामचरितमानसमें आया है—***'बिनु सतसंग बिबेक न होई।'*** (१। ३। ४) इसका तात्पर्य यह है कि सत्संगके बिना विवेक जाग्रत् नहीं होता। सत्संगसे बहुत विलक्षण लाभ होता है और स्वाभाविक शुद्धि होती है—

सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसंविदो
भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः।
तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि
श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति॥

(श्रीमद्भा० ३। २५। २५)

'संतोंके संगसे मेरे पराक्रमोंका यथार्थ ज्ञान करानेवाली तथा हृदय और कानोंको प्रिय लगनेवाली कथाएँ होती हैं। उनका सेवन करनेसे शीघ्र ही मोक्षमार्गमें श्रद्धा, प्रेम और भक्तिका क्रमशः विकास होगा।'

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥

(मानस ७। ६१)

केवल सत्संगसे, संतोंकी आज्ञाका पालन करनेसे साधकको परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति हो जाती है—

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः॥

(गीता १३। २५)

'दूसरे जो मनुष्य इस प्रकार ध्यानयोग, ज्ञानयोग आदि साधनोंको नहीं जानते, प्रत्युत केवल जीवन्मुक्त महात्माओंसे सुनकर उपासना करते हैं अर्थात् उनके वचनोंको महत्त्व देते हैं तथा उसके अनुसार अपना जीवन बनाते हैं, ऐसे वे सुननेके परायण मनुष्य भी मृत्युको तर जाते हैं।'

अतः जहाँतक बने, साधकको सत्संग नहीं छोड़ना चाहिये और कुसंगसे बचना चाहिये। सत्संगसे जितना लाभ होता है, उतनी ही कुसंगसे हानि होती है। परंतु दोनोंमें फर्क है। कुसंगसे होनेवाली हानि तो फल देकर नष्ट हो जाती है, पर सत्संगसे होनेवाला लाभ (विवेक) फल देकर नष्ट नहीं होता; क्योंकि यह सत् है और सत् कभी मिटता नहीं— **'नाभावो विद्यते सतः'** (गीता २। १६)।

संसारकी एक चाल है कि वह विश्वासघात करता ही है। वास्तवमें उससे विश्वासघात होता है, वह करता नहीं। कारण कि जीव संसारको सुखदायी समझकर उसकी तरफ आकृष्ट होता है, पर वह दुःखदायी सिद्ध होता है ! इस प्रकार जब विश्वासघात होता है, तब हृदयमें एक रेख आती है कि 'संसारमें मेरा कोई नहीं'! यह रेख ही मनुष्यको साधनमें लगा देती है, उसका विवेक जाग्रत् करा देती है।

दुःख आनेपर भी यदि सुखकी इच्छा रहेगी तो विवेक

* अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः। सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि॥ (गीता ४। ३६)
अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्। साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥ (गीता ९। ३०)

† स[illegible] है।

जाग्रत् नहीं होगा; क्योंकि सुखकी इच्छा महान् दोषी है। सुखके द्वारा दुःख दूर करनेकी इच्छा होनेपर दुःखकी वृद्धि ही होती है। कारण कि वास्तवमें सुखकी इच्छा ही सम्पूर्ण दुःखोंका कारण है। अतः दुःख आनेपर सुखकी इच्छाका त्याग करना चाहिये और दुःखके कारणकी खोज करनी चाहिये। सुखकी इच्छाका त्याग करनेपर और दुःखके कारणकी खोज करनेपर विवेक जाग्रत् हो जाता है।

मातृत्व-बोध

(सुश्री कृष्णा कुमारी)

अखिल ब्रह्माण्डकी अदम्य शक्ति-स्वरूपा होती है माता। समग्र सृष्टिका स्वरूप माताकी गोदमें ही अङ्कुरित, पल्लवित, पुष्पित एवं विकसित होता है। विश्वका उज्ज्वल भविष्य माके स्नेहाञ्चलमें ही फलता-फूलता है। यदि यूँ कहा जाय कि निखिल संसारकी सर्जन-शक्ति माता है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

बालक जन्मसे पूर्व गर्भमें ही मातासे संस्कार ग्रहण करने लग जाता है और जन्मके बाद वह माताका चरणानुगामी हो जाता है। बालकके बचपनका अधिकांश समय माताकी वात्सल्यमयी छायामें ही व्यतीत होता है। करणीय-अकरणीय, उचित-अनुचित, अच्छे-बुरे सभी संस्कारोंकी पुस्तकका प्रथम अक्षर वह मातासे ही सीखता है। माके स्नेहिल अपनत्वसे सराबोर भीगे आँचलमें ही बच्चा स्वर्गीय आनन्द एवं तृप्तिकी अनुभूति करता है। इसीलिये माताको प्रथम गुरुके अलंकरणसे अलंकृत किया गया है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्यमें अवलोकन करें तो विदित होगा कि आजकल अधिकांश माताएँ घरके बाहर कार्यरत हैं। नन्हे-नन्हे सुकुमार बच्चोंको यहाँतक कि नवजात शिशुको 'आया'के हवाले करके माताका अर्थ-उपार्जनहेतु दिनभर घरके बाहर रहना मातृत्व-बोधपर एक प्रश्न-चिह्न अङ्कित करता है। बाहरकी दुनियामें आँखें खोलते ही बालकको माताके अतुलित, अनिर्वच, अनुपम स्नेहसे वञ्चित रहना पड़ता है। माताके अमृततुल्य दुग्धपानके लिये आतुर शिशुको डिब्बे आदिका नकली दूध पीना पड़ता है। शामको माताके घर आते ही बालकके स्नेह-सागरमें ज्वार उठने लगता है। वह येन-केन-प्रकारेण अपने प्यारका उफान मातापर उड़ेलना चाहता है एवं माताके विपुल प्यारमें भीगकर अलौकिक तृप्ति पाना चाहता है, लेकिन दिनभरकी क्लान्त एवं थकी-हारी झुँझलायी मा उसे उतना स्नेह नहीं दे पाती, जितना कि बालकको अपेक्षा रहती है। माकी झिड़की सुनकर स्नेहातुर बालक रोकर सो जाता है।

विडम्बना है कि भोगवादी भौतिक चकाचौंधकी दुनियामें आज माता-पिता इतने व्यस्त हो गये हैं कि बालकके उचित लालन-पालनके लिये उनके पास समय ही नहीं है। बालकका विकास किस दिशामें एवं किस गतिसे हो रहा है, इससे वे प्रायः अनभिज्ञ ही रहते हैं। जबकि बालकका सर्वाङ्गीण विकास माकी डाँट एवं प्यारभरी मुसकानद्वारा ही होता है। जिस बालकको प्रारम्भसे ही माताका प्यार, ममता, आत्मीयता नहीं मिलेगी, उसका कुण्ठित होना निश्चित है। ऐसी स्थितिमें वह उद्दण्डताके नये-नये तरीके खोजता है। वह चाहता है कि कोई उसे स्वीकारे, उसके मनकी बात सुने।

स्नेहसे वञ्चित बालक न ठीकसे शिक्षा ही ग्रहण कर पायेगा और न ही कोई सर्जनात्मक कार्य कर सकेगा। प्यारके अभावमें तो बड़े-बड़े धैर्यशाली भी दिग्भ्रमित हो जाते हैं, फिर नन्हा-सा सुकुमार स्नेहाभाव कैसे सहन कर सकता है। हमारे एक परिचित हैं। दोनों पति-पत्नी नौकरी करते हैं। सुबह दस बजे जाते हैं, शामको छः बजे घर लौटते हैं। उनका इकलौता पुत्र नवीं कक्षामें पढ़ता है। उसके स्कूलका समय बारह बजेका है। स्वच्छन्द वातावरण तथा पिता-माताकी अत्यधिक व्यस्तताका यह परिणाम हुआ कि उसने स्कूल जानेके बजाय विडियो-फिल्में देखना प्रारम्भ कर दिया। यही नहीं, कुसंग पाकर वह और भी गंदी आदतोंका शिकार हो गया। जब माता-पिताको इस बातका पता चला तो वे सिर धुनकर रह गये। अब वे उसे राहपर लानेके लिये हर सम्भव प्रयास कर रहे हैं, लेकिन बात नहीं बन पा रही है, क्योंकि किशोरावस्था सबसे नाजुक उम्र होती है [illegible] स्नेह एवं मार्गदर्शनके

अभावमें बालक सदाके लिये किंकर्तव्यविमूढ एवं दिग्भ्रमित हो जाता है।

मातृत्व-क्षमताकी विमुखता समाजके लिये सबसे बाधक तत्त्व है। जिस राष्ट्रकी माताएँ अपने कर्तव्यबोधसे इतनी उदासीन हो जायँ, उस देशके भावी कर्णधारोंकी क्या स्थिति होगी ? इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

माके प्यार एवं वात्सल्यपर बालकका जन्म-सिद्ध अधिकार होता है, फिर वह उससे वञ्चित क्यों है ? ऐसा करके माताएँ राष्ट्रके प्रति भी अन्याय कर रही हैं। बालकोंमें अनन्त शक्ति निहित है। यदि उस शक्तिको उचित दिशा-निर्देश मिल जाय तो राष्ट्र गर्वोन्नत हो सकता है। परमोन्नतिके द्वार खुल सकते हैं; किंतु इसके विपरीत होनेपर पतन तो होना ही है।

जितने भी महापुरुष हुए हैं उनकी अदम्य शक्ति उनकी माताएँ ही रही हैं। भरतके शौर्यवान्, प्रतापी एवं धर्मात्मा राजा होनेके पीछे देवी शकुन्तलाकी अदम्य मातृत्व-शक्ति ही रही थी। माताओंकी प्रेरणात्मक कहानियाँ एवं प्रेरक प्रसंग बालकमें भावी प्रबुद्धता एवं सुसंस्कारके बीजारोपण करते हैं। बालकके प्रखर व्यक्तित्व-निर्माणमें माताके दूधकी भी अति महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। आजकल तो माताओंने अपनी संतानोंको स्तनपान करानेसे भी मुँह मोड़ लिया है। उन्हें अपने सौन्दर्यकी चिन्ता है, पुत्र या पुत्रीके भविष्यकी नहीं। मातृत्व-शक्तिकी इतनी विमुखता, उदासीनता इस सृष्टिको कहाँ ले जायगी, यह एक ज्वलन्त प्रश्नचिह्न आज गहन चिन्ताका विषय है।

अतः माताओंसे विनम्र अनुरोध है कि वे अपने दायित्व-बोधको पूर्ण निष्ठा एवं श्रद्धासे निभायें। अपने बालकोंका वात्सल्यपूर्ण लालन-पालन करके उन्हें सुसंस्कृत करें, सांस्कृतिक आदर्शोंका अनुपालन सिखायें। याद रखिये, बाल्यावस्थाके संस्कार ही जीवनभर परछाईकी तरह व्यक्तिसे जुड़े रहते हैं। मात्र अर्थोपार्जन या शौकसे नौकरी करनेकी बात कैसे पनपी ? यह भी एक विचारणीय विषय है। अपनी अदम्य शक्ति, योग्यता एवं प्रतिभाके सदुपयोगके लिये घर एवं बच्चोंके उचित लालन-पालनसे बड़ी और कौन-सी जगह हो सकती है। बच्चोंको शिक्षित एवं सुसंस्कृत करके जो माताएँ राष्ट्रका [illegible] और क्या होगा। वर्तमानमें युवापीढ़ीके भ्रमित, कुण्ठित, हीनभावनासे ग्रसित, अन्तर्द्वन्द्वसे पीड़ित, संशय-असमंजससे त्रस्त होनेके पीछे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारण सुसंस्कारोंका अभाव तथा प्यार, ममताकी अतृप्त चाह आदि कारण प्रमुख-रूपसे दृष्टिगत हो रहे हैं। ऐसी स्थितिमें विप्लवके कगारपर खड़े संसारको माताएँ अपने अतुलनीय, अकल्पनीय त्याग, सेवा, स्नेह, सहानुभूतिके मनोभावोंसे ही बचा सकती हैं।

हमारे धर्मग्रन्थ-पुराणादि माताकी अपार-असीम महिमाका वर्णन करते हैं। सभीमें माताको सबसे महान् बताया गया है। आजकी माताओंको उनसे शिक्षा लेनी चाहिये और अपने विस्मृत गौरवकी पुनः प्राप्तिके लिये प्रयत्न करना चाहिये। इस उद्धरणमें बृहद्धर्मपुराणका एक अंश दिया जाता है, जिसमें माताकी महिमाके साथ-साथ मातृ-स्तुति भी मूल श्लोकोंसहित संनिविष्ट है—

व्यास उवाच

पितुरप्यधिका माता गर्भधारणपोषणात्।
अतो हि त्रिषु लोकेषु नास्ति मातृसमो गुरुः ॥
नास्ति गङ्गासमं तीर्थं नास्ति विष्णुसमः प्रभुः।
नास्ति शम्भुसमः पूज्यो नास्ति मातृसमो गुरुः ॥
नास्ति चैकादशीतुल्यं व्रतं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
तपो नानशनात् तुल्यं नास्ति मातृसमो गुरुः ॥
नास्ति भार्यासमं मित्रं नास्ति पुत्रसमः प्रियः।
नास्ति भगिनीसमा मान्या नास्ति मातृसमो गुरुः ॥
न जामातृसमं पात्रं न दानं कन्यया समम्।
न भ्रातृसदृशो बन्धुर्न च मातृसमो गुरुः ॥
देशो गङ्गान्तिकः श्रेष्ठो दलेषु तुलसीदलम्।
वर्णेषु ब्राह्मणः श्रेष्ठो गुरुर्माता गुरुष्वपि ॥
पुरुषः पुत्ररूपेण भार्यामाश्रित्य जायते।
पूर्वभावाश्रया माता तेन सैव गुरुः परः ॥
मातरं पितरं चोभौ दृष्ट्वा पुत्रस्तु धर्मवित्।
प्रणम्य मातरं पश्चात् प्रणमेत् पितरं गुरुम् ॥
माता धरित्री जननी दयार्द्रहृदया शिवा।
देवी त्रिभुवनश्रेष्ठा निर्दोषा सर्वदुःखहा ॥
आराधनीया परमा दया शान्तिः क्षमा धृतिः।
स्वाहा स्वधा च गौरी च पद्मा च विजया जया ॥

दुःखहन्त्रीति नामानि मातुरेवैकविंशतिम्।
शृणुयाच्छ्रवयेन्मर्त्यः सर्वदुःखाद् विमुच्यते॥
दुःखैर्महद्भिर्दूनोऽपि दृष्ट्वा मातरमीश्वरीम्।
यमानन्दं लभेन्मर्त्यः स किं वाचोपपद्यते॥
इति ते कथितं विप्र मातृस्तोत्रं महागुणम्।
पराशरमुखात् पूर्वमश्रौषं मातृसंस्तवम्॥
सेवित्वा पितरौ कश्चिद् व्याधः परमधर्मवित्।
लेभे सर्वज्ञतां या तु साध्यते न तपस्विभिः॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन भक्तिः कार्या तु मातरि।
पितर्यपीति चोक्तं वै पित्रा शक्तिसुतेन मे॥

(पूर्वखण्ड २। ३३-४७)

व्यासजी कहते हैं—पुत्रके लिये माताका स्थान पितासे भी बढ़कर है, क्योंकि वह उसे गर्भमें धारण कर चुकी है तथा माताके द्वारा ही उसका पालन-पोषण हुआ है। अतः तीनों लोकोंमें माताके समान दूसरा कोई गुरु नहीं है। गङ्गाके समान कोई तीर्थ नहीं है, भगवान् विष्णुके समान कोई प्रभु नहीं है, शिवके समान कोई पूजनीय नहीं है तथा माताके समान कोई गुरु नहीं है। एकादशीके सदृश कोई त्रिभुवनविख्यात व्रत नहीं है, उपवासके समान कोई तपस्या नहीं है तथा माताके समान कोई गुरु नहीं है। भार्याके समान कोई मित्र नहीं है, पुत्रके समान कोई प्रिय नहीं है, बहिनके समान मान्य कोई स्त्री नहीं है तथा माताके समान कोई गुरु नहीं है। दामादके समान कोई दानका सुयोग्य पात्र नहीं है, कन्यादानके सदृश कोई दान नहीं है, भाईके समान बन्धु और माताके समान कोई गुरु नहीं है। देश वही श्रेष्ठ है, जो गङ्गाके समीप हो, पत्तोंमें तुलसीका पत्ता श्रेष्ठ है, वर्णोंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ है तथा गुरुजनोंमें माता ही सबसे श्रेष्ठ गुरु है। पुरुष पत्नीका आश्रय लेकर स्वयं ही पुत्ररूपमें जन्म लेता है, इस दृष्टिसे अपने पूर्वज पिताका भी आश्रय माता होती है, इसलिये वही सबसे श्रेष्ठ गुरु है। धर्मज्ञ पुत्र माता और पिता दोनोंको एक साथ देखनेपर पहले माताको प्रणाम करके पीछे पितारूपी गुरुको नमस्कार करे। माता, धरित्री, जननी, दयार्द्रहृदया, शिवा, त्रिभुवनश्रेष्ठा, देवी, निर्दोषा, सर्वदुःखहा, परम आराधनीया, दया, शान्ति, क्षमा, धृति, स्वाहा, स्वधा, गौरी, पद्मा, विजया, जया तथा दुःखहन्त्री—ये माताके ही इक्कीस नाम हैं। जो मनुष्य इन नामोंको सुनता और सुनाता है, वह सब दुःखोंसे मुक्त हो जाता है। बड़े-से-बड़े दुःखोंसे पीड़ित होनेपर भी भगवती माताका दर्शन करके मनुष्यको जो आनन्द मिलता है, उसे क्या वाणीद्वारा व्यक्त किया जा सकता है?

ब्रह्मन्! यह मैंने तुमसे परम गुणमय मातृ-स्तोत्रका वर्णन किया है। यह मातृ-स्तोत्र पूर्वकालमें मैंने अपने पिता श्रीपराशरजीके मुखसे सुना था। किसी परम धर्मज्ञ व्याधने केवल माता-पिताकी सेवा करके वह सर्वज्ञता प्राप्त कर ली, जो तपस्वियोंको भी सुलभ नहीं है। इसलिये पूर्ण यत्न करके माता और पिताके चरणोंमें भक्ति करनी चाहिये। यह बात मेरे पिता शक्तिनन्दन पराशरजीने मुझे बतायी थी।

इस तरहके अन्य और भी अनेक वचन विभिन्न पुराणों एवं मनु आदि धर्मशास्त्रोंमें भरे पड़े हैं। जिज्ञासु पाठक उन्हें वहीं देख सकते हैं।

गो-ग्रासकी महिमा

तीर्थस्नानेषु यत्पुण्यं यत्पुण्यं विप्रभोजने। सर्वव्रतोपवासेषु सर्वेष्वेव तपःसु च॥
यत्पुण्यं च महादाने यत्पुण्यं हरिसेवने। भुवः पर्यटने यत्तु वेदवाक्येषु यद्भवेत्॥
यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु दीक्षायां च लभेन्नरः। तत्पुण्यं लभते प्राज्ञो गोभ्यो दत्त्वा तृणानि च॥

तीर्थोंमें स्नान करने, ब्राह्मण-भोजन करवाने, समस्त व्रत-उपवासोंको करने एवं तप-साधनोंद्वारा, महादान-सर्वस्वदानके करने, हरिकी सेवा, भूमण्डलकी प्रदक्षिणा, वेदवाक्योंका श्रवण-पाठ, विविध यज्ञोंके अनुष्ठान तथा दीक्षा ग्रहण आदि करनेसे जो महापुण्य अर्जित किया जाता है, वह सभी महापुण्य भाग्यवान् मनुष्य मात्र गौओंको गो-ग्रास—चारा प्रदान करके प्राप्त कर सकता है।

परिस्थितियोंका सदुपयोग

'हम क्या चाहते हैं ?' इस समस्यापर विचार करनेसे यह स्पष्ट विदित होता है कि कोई भी परिस्थिति हमारी वास्तविक चाह नहीं है। प्राप्त परिस्थितिके सदुपयोगमें ही हमारा अधिकार है।

पर जब हम प्रमादवश परिस्थितिका सदुपयोग न करके उसका भोग करने लगते हैं, तब हमें विवश होकर परिस्थितियोंका दास होना पड़ता है, जो वास्तवमें अभीष्ट नहीं है; क्योंकि परिस्थितियोंकी दासता हमें जडता—परतन्त्रता आदिमें आबद्ध कर देती है।

स्वरूपसे प्रत्येक परिस्थिति प्राकृतिक न्याय है। उसमें किसीका अहित नहीं है, अपितु सभीका हित है। इस दृष्टिसे प्रत्येक परिस्थिति आदरके योग्य है। हम मोह तथा आसक्तिवश भले ही परिस्थितिकी स्तुति तथा निन्दा करें, वास्तवमें तो परिस्थितियोंकी निन्दा तथा स्तुतिके लिये कोई स्थान ही नहीं है, कारण कि स्तुति उसकी अपेक्षित है, जिससे नित्य सम्बन्ध हो और निन्दनीय वह है, जिससे किसीका अहित हो।

परिस्थितिसे नित्य-सम्बन्ध तो सम्भव ही नहीं है, क्योंकि वह स्वभावसे ही सतत परिवर्तनशील है, पर वह निन्दनीय भी नहीं है, क्योंकि उसके सदुपयोगसे ही हम परिस्थितियोंसे अतीतके जीवनका अनुभव कर सकते हैं। परिस्थितियोंमें जीवन-बुद्धि प्रमाद है और साधन-बुद्धि वास्तविकता है। साधन-बुद्धिसे प्रत्येक परिस्थिति हितकर है और जीवन-बुद्धिसे तो प्रत्येक परिस्थिति हमें दीनता तथा अभिमानमें ही आबद्ध करती है। दीनता और अभिमानकी अग्नि प्रज्वलित रहते हुए हमें चिर शान्ति तथा स्थायी प्रसन्नता मिल ही नहीं सकती। शान्तिके बिना सामर्थ्यकी प्राप्ति और प्रसन्नताके बिना प्राप्त सामर्थ्यका सदुपयोग सम्भव ही नहीं है।

अतः आवश्यक सामर्थ्यकी प्राप्तिके लिये शान्ति और प्राप्त सामर्थ्यके सदुपयोगके लिये प्रसन्नताका सुरक्षित रखना अनिवार्य है। पर वह तभी सम्भव होगा, जब हम परिस्थितियोंमें जीवन-बुद्धि उत्पन्न न होने दें और प्रत्येक परिस्थितिका साधन-बुद्धिसे सदुपयोग करनेके लिये प्रयत्नशील बने रहें। परिस्थितिका सदुपयोग परिस्थितिसे असंग करनेमें और अनन्त नित्य चिन्मय जीवनसे अभिन्न करनेमें समर्थ है।

अब यदि कोई यह कहे कि क्या परिस्थिति नित्य चिन्मय नहीं हो सकती ? तो कहना होगा कि यह प्रश्न वर्तमान जीवनसे सम्बन्ध नहीं रखता। हाँ, यह अवश्य है कि हमारी आन्तरिक माँग नित्य चिन्मय जीवनकी ही है। उसकी पूर्तिके लिये चाहे हमें उस जीवनसे अभिन्न होना हो अथवा वह जीवन हमारेमें अवतरित हो, पर इन दोनों बातोंके लिये परिस्थितिसे तो असंग होना ही होगा, क्योंकि परिस्थितिसे असंग बिना हुए जडतासे जो हमारा तादात्म्य हो गया है, वह निवृत्त नहीं हो सकता और न कामका ही नाश हो सकता है।

कामका नाश बिना हुए न तो रामसे अभिन्नता हो सकती है, न रामसे योग ही हो सकता है और न रामका प्रेम ही मिल सकता है। अब विचार यह करना है कि यदि कोई रामकी सत्ता ही स्वीकार न करे तो भी यह तो मानना ही होगा कि कामकी अपूर्णता किसीको अभीष्ट नहीं है।

कामसे रहित जीवनकी माँग स्वाभाविक माँग है। उसी माँगको रामकी लालसाके नामसे आस्तिकोंने, नित्य-जीवनके नामसे तत्त्वज्ञोंने और चिर-शान्ति तथा दुःखकी निवृत्तिके नामसे भौतिकवादियोंने कहा।

हमें तो सभी वादोंका आदर करते हुए अपनी समस्या हल करनी है। समस्या सभी वादोंमें एक है और मान्यताएँ अनेक हैं। हमें मान्यतामें जीवन-बुद्धि नहीं रखनी है, अपितु साधन-बुद्धि रखनी है। साधन-बुद्धिसे सभी मान्यताएँ आदरणीय हैं।

अब यदि कोई यह कहे कि सभी साधन-पद्धतियाँ मान्यताएँ हैं तो फिर सिद्धान्त क्या है ? तो कहना होगा कि सिद्धान्त एक है, अनेक नहीं और उसका वर्णन नहीं हो सकता, प्रत्युत उसकी प्राप्ति हो सकती है, कारण कि वर्णन करनेकी सामर्थ्य सीमित है और सिद्धान्त असीम है।

मान्यताका जन्म व्यक्तिकी रुचि तथा योग्यताके आधारपर निर्भर है। सर्वांशमें दो व्यक्तियोंकी भी योग्यता तथा रुचि समान नहीं होती। इस दृष्टिसे साधन-पद्धतिमें भेद होनेपर भी सिद्धान्तमें कोई भेद नहीं है, क्योंकि सभीका वास्तविक

माँग एक है, अनेक नहीं। उस वास्तविक माँगका पता लगानेके लिये ही हमें प्राप्त परिस्थितिका सदुपयोग करना है, भोग नहीं।

परिस्थितिका भोग तो हमें कामके जालमें ही आबद्ध करता है, जिससे मुक्त होना परम आवश्यक है। यद्यपि प्रत्येक परिस्थिति उस अनन्तके प्रकाशसे ही प्रकाशित है, अथवा यों कहो कि उसीकी अभिव्यक्ति है, परंतु परिवर्तनशील तथा सीमित होनेके कारण उससे अतीतकी ओर गतिशील होना आवश्यक है। उसके लिये हमें उस अनन्तहीके नाते ऊपरसे क्रियाशील तथा भीतरसे चिर-शान्त रहना है।

क्रियाशीलता हमें विद्यमान रागसे रहित बनायेगी और शान्ति नवीन राग उत्पन्न न होने देगी। राग-रहित होते ही हम बड़ी ही सुगमतापूर्वक अपने लक्ष्यसे अभिन्न हो जायँगे, यह निर्विवाद सिद्ध है। अब यह विचार करना है कि राग-रहित होनेके लिये हमें परिस्थितिका सदुपयोग किस भावसे, किस प्रकारसे और किस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये करना चाहिये, तो कहना होगा कि सर्वहितकारी तथा सर्वात्मभाव ही वास्तविक भाव है, विरक्ति तथा उदारतापूर्वक कार्य करनेका ढंग ही वास्तविक ढंग है और उस अनन्तसे अभिन्न होनेका उद्देश्य ही वास्तविक उद्देश्य है।

यदि परिस्थितिका सदुपयोग करनेमें उदारता तथा विरक्ति नहीं अपनायी गयी तो सर्वहितकारी भाव स्वार्थभावमें, सर्वात्मभाव देहभावमें और अनन्त नित्य-चिन्मय जीवनका उद्देश्य भोग-प्राप्तिमें बदल जायगा, जो वास्तविक उद्देश्य नहीं है।

इस प्रकार परिस्थितिका सदुपयोग न हो सकेगा, अपितु परिस्थितिका भोग होने लगेगा, जो रागका हेतु है, अतः परिस्थितिका सदुपयोग करनेके लिये विरक्ति तथा उदारताको अपना लेना अनिवार्य होगा, तभी अनन्तसे अभिन्न होनेके उद्देश्यकी पूर्ति हो सकेगी।

परिस्थितिका भोग हमें कर्तृत्वके अभिमानमें आबद्ध कर कर्ममें प्रवृत्त करता है और सुख-दुःखरूपी फलको प्राप्त कराता है। जिस प्रकार बीज, वृक्ष और फलमें जातीय एकता तथा गुणोंकी भिन्नता है, उसी प्रकार कर्ता, कर्म तथा फलमें जातीय एकता और गुणोंकी भिन्नता है।

परिस्थितिका सदुपयोग कर्ताको साधक, कर्मको साधन तथा फलको साध्यके रूपमें अथवा प्रेमी, प्रेम और प्रेमास्पदके रूपमें अथवा जिज्ञासु, जिज्ञासा तथा तत्त्व-ज्ञानके रूपमें अथवा सेवक, सेवा और सेव्यके रूपमें बदल देता है।

जिस प्रकार कर्ता, कर्म और फलमें जातीय एकता है, उसी प्रकार साधक, साधन और साध्यमें, प्रेमी, प्रेम और प्रेमास्पदमें, जिज्ञासु, जिज्ञासा और तत्त्व-ज्ञानमें तथा सेवक, सेवा और सेव्यमें भी जातीय एकता है।

अतएव हमें अपनेको साधक, प्रेमी, जिज्ञासु और सेवक मानकर ही परिस्थितिका सदुपयोग करना चाहिये। साधक 'साधन' होकर, प्रेमी 'प्रेम' होकर, सेवक 'सेवा' होकर और जिज्ञासु 'जिज्ञासा' होकर अपने-अपने लक्ष्यसे अभिन्न होते हैं।

साध्य, प्रेमास्पद, तत्त्वज्ञान और सेव्य किसी एकहीके नाम हैं, क्योंकि सत्‌में कल्पना-भेद भले ही हो, पर जातीय तथा स्वरूपका भेद नहीं होता।

जब हमारी वास्तविक चाह परिस्थितियोंसे अतीतके जीवनकी है, तब हमें परिस्थितियोंका भोग न करके, उनका सदुपयोग करनेके लिये सतत प्रयत्नशील रहना चाहिये।

तभी हम अपने उद्देश्यकी पूर्ति करनेमें समर्थ हो सकेंगे। परिस्थितियोंके सदुपयोगमें किसी प्रकारकी भी असमर्थता तथा परतन्त्रता नहीं है। प्राप्तका सदुपयोग ही परिस्थितिका सदुपयोग है। (जीवन-दर्शनसे)

मुक्ति

किसी विधि-निषेधके द्वारा मुक्ति नहीं मिल सकती, तुम सदा मुक्त ही हो, यदि तुम पहलेसे मुक्त न हो तो तुम्हारी कभी मुक्ति नहीं हो सकती। आत्मा स्वप्रकाश है, कार्य-कारण आत्माको स्पर्श नहीं कर सकते। इस 'विदेह' अवस्थाका नाम ही है मुक्ति। ब्रह्म भूत, भविष्यत् और वर्तमान सबसे परे है। यदि मुक्ति किसी कर्मका फल होता तो उसका कोई मूल्य ही नहीं था, वह एक यौगिक वस्तु होती, उसके भीतर बन्धनका बीज रहता। यह मोक्ष ही [illegible] मात्र नित्य-संगी है, इसे प्राप्त करना नहीं पड़ता, आत्माका यथार्थ स्वरूप यही है।—स्वामी विवेकानन्द

साधनोपयोगी पत्र

संसारमें रहनेका तरीका

आपने लिखा 'नाटकके पात्रकी-ज्यों अभिनय करनेकी बात पूरी समझमें नहीं आयी, मनमें एक भाव हो और ऊपरसे दूसरा बतलाया जाय, तो उसमें झूठ और धोखेका आरोप होगा।' बात ठीक है, झूठ और धोखा नीयतमें दोष होनेसे होता है। नाटकके पात्रके द्वारा जो क्रिया होती है, वह इतनी जाहिर होती है कि किसीको उसमें झूठ और धोखेका अनुमान नहीं होता। सभी जानते हैं कि ये केवल अभिनय करनेवाले पात्र हैं, स्टेजपर जो कुछ दिखलाया जाता है वह खेल है। खेलमें जो आपसका व्यवहार होता है वह स्टेजपर तो सच्चा ही होता है—और है भी वह स्टेजके लिये ही। इसी प्रकार यह संसार भगवान्‌का नाट्य-मञ्च (स्टेज) है। इसपर हमलोग सभी खेलनेवाले पात्र (ऐक्टर) हैं। सभीके जिम्मे अलग-अलग पार्ट हैं। अपना-अपना पार्ट सभीको खेलना पड़ता भी है। सभी बाध्य हैं भगवान्‌के कानूनके। परंतु जो खेलके सामानको, खेलसे होनेवाली आमदनीको अपनी मान लेता है, उसपर अधिकार करना चाहता है, अथवा अपना पार्ट ठीक नहीं खेलता यानी अकर्तव्य कर्म करता है, वह दण्डका पात्र होता है। जो ठीक खेल खेलता है तथा खेलके सामान, खेलके पात्र और खेलकी आमदनीपर प्रभुका अधिकार समझता है, वह खेल चाहे किसी रसका हो—करुण हो या भयानक, सुन्दर हो या बीभत्स—वह सदा आनन्दमें रहता है। उसका काम है अपने पार्टको ठीक करना। धोखा या झूठ तब हो, जब वह मनसे तो पार्ट करना चाहे नहीं और केवल ऊपरसे करे। अर्थात् भगवान्‌के विधानके अनुसार जो जिसका पुत्र है, उसे (इस स्टेजपर—संसारमें) उसको ठीक पिता ही जानकर सच्चे मनसे पुत्रका-सा बर्ताव ही करना चाहिये। स्त्रीको पतिके साथ पत्नीका, पुरुषको पत्नीके साथ पतिका, माताको पुत्रके साथ माताका, पुत्रको माताके साथ पुत्रका इसी प्रकार सच्चे मनसे बर्ताव करना चाहिये। जब बर्ताव और मन एक हैं, तब धोखा और झूठ क्यों है। बर्ताव और मन दोनों ही व्यवहारमें हैं अर्थात् स्टेजके खेलके लिये हैं। और व्यवहारमें दोनों ही समान हैं। रही स्टेजके बाहरकी बात—वास्तविक स्थितिकी [illegible] जो वास्तविक स्थिति तो खेल है ही। खेलमें वहींतक सत्यता है, जहाँतक खेलसे सम्बन्ध है। खेलके परे तो हम न पात्र हैं, न हमारा कोई नाता है। हमारा नाता तो केवल एक प्रभुसे है, जिसका यह सारा खेल है।

या यों समझना चाहिये कि यह घर मालिकका—भगवान्‌का है। हम इसमें सेवक हैं। भगवान्‌ने नाना प्रकारके सम्बन्ध रचकर हमसे सेवा लेनेके लिये इतने सम्बन्धियोंको भेजा है। हमें उनकी यथायोग्य सेवा करनी चाहिये—भगवान्‌के भेजे हुए समझकर। उनकी सेवासे भगवान् प्रसन्न होते हैं, तब उनकी सेवामें अवहेलना क्यों की जाय? परंतु उनकी सेवा करनी है भगवान्‌की सेवाके लिये ही। हमारा सम्बन्ध तो भगवान्‌से ही है—भगवान्‌के नातेसे ही इनसे नाता है। इनकी सेवा इसीलिये हमको आनन्द देती है कि इससे भगवान् प्रसन्न होते हैं। यदि भगवान् कहें कि तुम्हें दूसरा काम दिया जायगा, इनकी सेवा दूसरोंको सौंपी जायगी, तो बहुत ठीक है। हमें तो भगवान्‌का काम करना है न? वे कुछ भी करावें। वे यहाँ रखें तो ठीक है, दूसरी जगह (और किसी योनिमें) भेज दें तो ठीक है। जिनसे सम्बन्ध है, उनके बीचमें रखें तो ठीक है और उनसे अलग रखें तो भी ठीक है। घर उनका, घरकी सामग्री उनकी, घरके आदमी उनके और हम भी उनके। वे चाहे जैसे चाहें जिसका उपयोग करें। न भोगकी इच्छा हो न त्यागकी; न कोई अपना हो न पराया; न जीनेमें सुख हो न मरनेमें दुःख। हर बातके लिये वैसे ही तैयार रहना चाहिये जैसे आज्ञाकारी सेवक अपने मालिकका हुक्म बजानेके लिये तैयार रहता है।

बस, मैनेजर बन जाय—मालिक नहीं। मालिकीका दावा छोड़ दे, ममत्व हटा ले, मालिक चाहे जहाँ रखें। इस दुकानके रुपये उस दुकानमें भेजनेकी आज्ञा दें, तो खुशी है; उस दुकानके रुपये यहाँ मँगवा लें, तो खुशी है। यहाँके किसीको भी बदली करके और किसी जगह भेज दें या और किसीको बदली करके यहाँ बुला लें—दोनोंमें ही खुशी है। और हमारी यहाँसे बदली कर दें तो भी खुशी है। हम भी उन्हींके, सब दुकानें उन्हींकी, सब सामान-धन उनका और आदमी उनके। इस प्रकार संसारमें रहनेसे एक तो अभिमानका

नाश होता है, जो बहुतसे पापोंकी जड़ है तथा घर और घरके लोगोंमें ममता नहीं रहती, जो दुःखोंको उपजाती है। याद रखना चाहिये, दुःख ममतासे ही होता है। न मालूम कितने लोगोंके रोज पुत्र मरते होंगे, कितनोंके दिवाले निकलते होंगे, हम नहीं रोते। परंतु जिसमें मेरापन है, उसको कुछ भी हो जाय तो बड़ा दुःख होता है। मालिकका मान लेनेपर ऐसी ममता नहीं रहती; क्योंकि सारी दुनिया ही मालिककी है। कोई कहीं रहे, रहेगा मालिककी दुनियामें ही। पाप आसक्तिसे होते हैं, मालिकका मान लेनेपर आसक्ति भी नहीं रहती। और बिना किसी तकलीफके सावधानीके साथ संसारमें कर्तव्य-कर्म किया जाता है, इससे सेवा-रूप भजन भी होता है।

इस विषयको ठीक तरहसे समझना चाहिये। यह ठीक समझमें आ जानेपर फिर किसी भी हालतमें दुःख या अशान्ति नहीं हो सकती। जीवन-मृत्यु, मान-अपमान, लाभ-हानि, सुख-दुःख—सभीमें मालिककी लीला, मालिकका हाथ, मालिककी प्रसन्नता, मालिककी रुचि, मालिकका विधान और उसीमें अपना परम मङ्गल देखकर अपार आनन्द और विशाल शान्ति रहती है। कर्तव्य-कर्म तो मालिककी सेवाके लिये किये जानेवाले अभिनयके रूपमें होता ही है। निरन्तर एक ही उद्देश्य रहता है, जीवन एक ही लक्ष्यपर लग जाता है—स्थिर हो जाता है, वह है भगवान्की प्रसन्नता, भगवान्का प्रेम, भगवान्की उपलब्धि। यही मनुष्य-जीवनका सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य है। भगवान्की उपलब्धिको छोड़कर जीवनका और कोई भी प्रयोजन नहीं होना चाहिये। हमारा प्रत्येक कार्य, प्रत्येक चेष्टा, प्रत्येक भावना, प्रत्येक विचारधारा निरन्तर वैसे ही भगवान्की ओर अबाध-गतिसे चलनी चाहिये, जिस तरह गङ्गाकी धारा सारे विघ्नोंको हटाती हुई अनवरत समुद्रकी ओर बहती है। समस्त पदार्थ, समस्त भावना, समस्त सम्बन्ध भलीभाँति अर्पण हो जाने चाहिये—भगवच्चरणोंमें। अपना कुछ भी न रहे, सब कुछ उनका हो जाय। जो कुछ उनका हो गया, वही सुरक्षित है, वही सफल है।

मन स्थिर करनेके लिये वैराग्यकी भावना तथा भजनके अभ्यासकी आवश्यकता है। जबतक संसारमें राग—आसक्ति है, तबतक मनकी चञ्चलताका मिटना बहुत कठिन है। संसारके बदले भगवान्में राग उत्पन्न करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। पहले-पहल तो ध्यानके लिये बैठनेपर वे बातें याद आयेंगी, जो और समय नहीं आतीं—फालतू बातें। परंतु अभ्यास जारी रखनेपर वे सब बातें चली जायँगी। इसके लिये निरन्तर अभ्यासकी आवश्यकता है।

सबसे सरल उपाय है भगवान्के नामका जप करना। मन लगे या न लगे, यदि श्रीभगवान्के नामका जप होता रहेगा तो अन्तमें उसीसे कल्याण हो जायगा—इस बातपर विश्वास करना चाहिये। साथ ही वैराग्यकी भावना बढ़ानी चाहिये। भगवान्के सम्बन्धको छोड़कर जगत्में जो कुछ भी वस्तु है, अन्तमें दुःख देनेवाली ही है। जगत्की, घरकी, शरीरकी सेवा करनी चाहिये—भगवान्के सम्बन्धको लेकर ही। यदि भोगोंके सम्बन्धसे जगत्का सेवन होगा तो उससे दुःख ही उपजेगा, यह निश्चय समझना चाहिये। भगवान्से रहित जगत्—भोग-जगत् तो 'दुःखालय' ही है।

अमृत-प्राप्तिका उपाय

पराचः कामाननुयन्ति बालास्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम्।
अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते॥

(कठ० २।१।२)

'जो मूर्ख बाहरी भोगोंमें ही रचे-पचे रहते हैं, वे सर्वत्र फैले हुए मृत्युके पाशमें पड़ते हैं, परंतु जो बुद्धिमान् पुरुष नित्य अमृतत्व (परमात्मा) को जान लेते हैं, वे इस जगत्के अनित्य भोगोंमेंसे किसीकी भी इच्छा नहीं करते।'

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः। अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते॥

(कठ० २।३।१४)

'मनुष्यके मनमें जो कामनाएँ भरी हैं, वे सारी-की-सारी जब भलीभाँति नष्ट हो जाती हैं, तब वह अमर (जन्म-मृत्युसे रहित) हो जाता है और यहीं ब्रह्मका सम्यक् प्रकारसे अनुभव करता है।'

गीता-तत्त्व-चिन्तन

गीताका गोपनीय विषय

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

पुरोऽर्जुनस्य कृष्णेन स्वात्मा हि प्रकटीकृतम्।
विषयो गोपनीयोऽयं गीताया मन्यते बुधैः॥

भगवान्‌के द्वारा आत्मीय भक्त अर्जुनके सामने अपने-आपको प्रकट करना ही गीताका मुख्य गोपनीय विषय है। भगवान् अवतार लेकर अपने-आपको छिपाते हैं, सबके सामने अपनी भगवत्ता प्रकट नहीं करते (७।२५); परंतु अपने अन्तरङ्ग प्यारे भक्तोंके सामने वे छिप ही नहीं सकते, अपने-आपको प्रकट कर ही देते हैं।

भगवान्‌ने गीतामें अपने प्यारे भक्त अर्जुनके सामने अपनी भगवत्ता, महत्ता, प्रभुताकी बहुत-सी बातें कही हैं; जैसे—

इस योग (कर्मयोग)को मैंने पहले सूर्यसे कहा था। फिर सूर्यने मनुसे और मनुने इक्ष्वाकुसे कहा। इस प्रकार परम्परासे प्राप्त इस योगको समस्त राजर्षियोंने काममें लिया। परंतु इसको जाननेवाले न होनेसे बहुत कालसे यह योग लुप्तप्राय हो गया है। उसी इस पुरातन योगको मैंने तेरेसे कहा है, यह बड़े रहस्यकी बात है। तात्पर्य है कि जिसने पहले सूर्यको उपदेश दिया, वही मैं आज तुझे उपदेश दे रहा हूँ—यह अत्यन्त गोपनीय बात है (४।१-३)।

मेरे और तेरे बहुत-से जन्म हो गये हैं; उन सबको मैं जानता हूँ, तू नहीं (४।५)। मैं अजन्मा, अव्ययात्मा और सम्पूर्ण प्राणियोंका स्वामी रहता हुआ ही प्रकृतिको अपने वशमें करके प्रकट होता हूँ (४।६)। मैं ही धर्मकी स्थापना, भक्तोंकी रक्षा और दुष्टोंका विनाश करनेके लिये युग-युगमें अवतार लेता हूँ (४।७-८)। महासर्गके आदिमें मैंने ही चारों वर्णोंकी रचना की है। रचना करनेपर भी मैं अकर्ता ही रहता हूँ (४।१३)। मेरेको सम्पूर्ण यज्ञों तथा तपोंका भोक्ता, सम्पूर्ण लोकोंका महान् ईश्वर और सम्पूर्ण प्राणियोंका सुहृद् जानकर मनुष्य शान्तिको प्राप्त हो जाता है (५।२९)। जो मेरेको सबमें और सबको मेरेमें देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और मेरे लिये वह अदृश्य नहीं होता (६।३०)।

इस संसारका मेरे सिवाय दूसरा कोई कारण नहीं है। यह सम्पूर्ण संसार मेरेमें ही ओतप्रोत है। जलमें रस, चन्द्र-सूर्यमें प्रभा आदिमें कारणरूपसे मैं ही हूँ। सात्त्विक, राजस और तामस भाव मेरेसे ही होते हैं; परंतु मैं उनमें और वे मेरेमें नहीं हैं अर्थात् सब कुछ मैं-ही-मैं हूँ (७।७—१२)। मैं सम्पूर्ण संसारमें व्याप्त हूँ और सम्पूर्ण प्राणी मेरेमें स्थित हैं, पर मैं उन प्राणियोंमें नहीं हूँ और वे प्राणी मेरेमें नहीं हैं—यह मेरा ईश्वर-सम्बन्धी योग (सामर्थ्य) देख (९।४-५)। महाप्रलयमें सम्पूर्ण प्राणी मेरी प्रकृतिको प्राप्त होते हैं और महासर्गके आदिमें मैं फिर उनकी रचना करता हूँ (९।७)।

इस सम्पूर्ण जगत्‌का माता, धाता, पिता, पितामह आदि मैं ही हूँ (९।१७)। सत्-असत्, जड़-चेतन आदि जो कुछ है, वह सब मैं ही हूँ (९।१९)। मैं ही अनन्यभक्तोंका योगक्षेम वहन करता हूँ (९।२२)। मैं ही सम्पूर्ण यज्ञोंका भोक्ता तथा सम्पूर्ण जगत्‌का मालिक हूँ; परंतु जो मेरेको तत्त्वसे नहीं जानते, उनका पतन हो जाता है (९।२४)। मैं सम्पूर्ण प्राणियोंमें समान हूँ। कोई भी प्राणी मेरे राग-द्वेषका विषय नहीं है; परंतु जो भक्तिपूर्वक मेरा भजन करते हैं, मैं उनमें और वे मेरेमें विशेषतासे हैं (९।२९)।

मेरे प्रकट होनेको न देवता जानते हैं और न महर्षि ही; क्योंकि मैं सब तरहसे देवताओं और महर्षियोंका भी आदि हूँ (१०।२)। प्राणियोंके बुद्धि, ज्ञान आदि भाव मेरेसे ही होते हैं (१०।४-५)। मैं ही सबका मूल कारण हूँ और मेरेसे ही सब सत्ता-स्फूर्ति पाते हैं (१०।८)। मैं ही भक्तोंपर कृपा करके उनके अज्ञानजन्य अन्धकारका नाश कर देता हूँ (१०।११)।

सम्पूर्ण प्राणियोंका बीज मैं ही हूँ। मेरे बिना कोई भी प्राणी नहीं है (१०।३९)। मैं अपने किसी एक अंशमें सम्पूर्ण संसारको व्याप्त करके स्थित हूँ (१०।४२)। तू अपने इन चर्मचक्षुओंसे मेरे विराट्‌रूपको नहीं देख सकता; अतः मैं तुझे दिव्यचक्षु देता हूँ; जिससे तू मेरे इस ईश्वर-सम्बन्धी योग-(सामर्थ्य)को देख (११।८)। मैं सम्पूर्ण प्राणियोंका क्षय

करनेके लिये बढ़ा हुआ काल हूँ और यहाँ इन सम्पूर्ण योद्धाओंका नाश करनेके लिये आया हूँ। तेरे युद्ध किये बिना भी यहाँ कोई नहीं बचेगा। इन सबको मैंने पहलेसे ही मार रखा है। अतः तू निमित्तमात्र बनकर युद्ध कर, तेरी विजय होगी (११।३२—३४)।

मेरे परायण हुए जो भक्त सम्पूर्ण कर्मोंको मेरेमें अर्पण करके अनन्यभावसे मेरा भजन करते हैं, उनका मैं स्वयं संसार-सागरसे उद्धार करनेवाला बन जाता हूँ (१२।६-७)। जो अव्यभिचारिणी भक्तिसे मेरा भजन करता है, वह गुणोंसे अतीत हो जाता है (१४।२६)। मैं ही ब्रह्म, अविनाशी, अमृत, शाश्वतधर्म और ऐकान्तिक सुखका आश्रय हूँ (१४।२७)। चन्द्र, सूर्य और अग्निमें मेरा ही तेज है। मैं ही अपने ओजसे पृथ्वीको धारण करता हूँ। मैं ही वैश्वानररूपसे प्राणियोंके खाये हुए अन्नको पचाता हूँ। मैं सबके हृदयमें रहता हूँ। सम्पूर्ण वेदोंमें जाननेयोग्य मैं ही हूँ (१५।१२—१५)। मैं क्षरसे अतीत और अक्षरसे उत्तम हूँ; अतः वेदमें और शास्त्रमें मैं ही पुरुषोत्तम नामसे प्रसिद्ध हूँ (१५।१८)। जो अनन्यभावसे मेरा ही भजन करता है, वह सर्ववित् है (१५।१९)। मैंने यह अत्यन्त गोपनीय शास्त्र कहा है, जिसको जानकर मनुष्य ज्ञानवान् और कृतकृत्य हो जाता है (१५।२०)।

मनुष्य सम्पूर्ण कर्मोंको सदा करता हुआ भी मेरी कृपासे अविनाशी पदको प्राप्त हो जाता है (१८।५६)। तू मेरे परायण होकर सम्पूर्ण कर्मोंको मेरे अर्पण कर दे तो तू मेरी कृपासे सम्पूर्ण विघ्न-बाधाओंको तर जायगा (१८।५७-५८)। तू सम्पूर्ण धर्मोंके आश्रयोंको छोड़कर केवल एक मेरी शरणमें आ जा। मैं तेरेको सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू चिन्ता मत कर (१८।६६)।

—इस प्रकार भगवान्ने रहस्यकी, अपने-आपको भक्तोंके सामने प्रकट करनेकी जितनी भी बातें कही हैं, वे सभी गोपनीय विषय हैं।

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्—

कानकी वैज्ञानिक देखभाल

(श्रीनृसिंहदेवजी अरोड़ा)

कहते हैं बड़े कान पुरुषोंके लिये भाग्यशाली होते हैं और छोटे कान स्त्रियोंकी सुन्दरतामें चार चाँद लगा देते हैं। पशुओंकी खोपड़ीके बाहरी बाजूके स्नायु ऐच्छिक होनेके कारण उनके कानोंमें एक विशेषता यह होती है कि पशु अपने कान जहाँसे आवाज आती है, उस दिशामें मोड़ लेते हैं, परंतु मनुष्यके स्नायु अनैच्छिक होनेके कारण बाहरी कानका उपयोग आवाजकी लहरोंको एकत्रित कर उन्हें कर्णनलिका (आडीटरी) की ओर भेजनेमें ही होता है।

हमारी पाँच ज्ञानेन्द्रियोंमेंसे कान भी एक कोमल इन्द्रिय है, इसलिये इसकी विशेष सावधानीसे रक्षा करनी चाहिये। कानसे खिलवाड़ नहीं करना चाहिये अन्यथा यह छेड़-छाड़ जीवनभरके लिये बहरा बना सकती है। जिसे हम कान कहते हैं वह तो केवल सुननेवाले यन्त्रका बाहरी भाग है। इसमें कई पर्त और घुमाव होते हैं। बाहरी कानसे एक नली अंदर (मध्य कानमें) जाती है। हो सकता है इसी मार्गसे दिनभरमें अनेक प्रकारकी गंदगी और हानिकारक कीटाणु जमा हो जायँ। यदि यह गंदगी (जिसे कानका मैल भी कहते हैं) निरन्तर कुछ दिनोंतक जमा होती रहे और साफ नहीं की जाय तो यह कड़ी होकर रोग बन जाती है, जिससे कानमें दर्द, फुंसियाँ, यहाँतक कि बहरापन भी हो सकता है। कानकी नलीके अन्तमें एक झिल्ली होती है जिसे कानका पर्दा कहते हैं। कनपटीपर जोरसे तमाचा मारनेसे पर्देपर आघात पहुँचता है, क्योंकि यह झिल्ली बहुत ही कोमल होती है, अतः कानका मैल निकालनेके लिये कानमें पिन, पेंसिल या कोई नुकीली वस्तु कभी भी नहीं डालनी चाहिये। बल्कि, कानमें कुछ दिनोंतक सरसों, तिल्ली, नारियल या जैतून किसी भी उपलब्ध तेलकी मामूली गर्म एक-एक बूँद डालनेसे कानका कड़ा मैल मुलायम पड़कर ऊपर आ जायगा। अब इसे स्वच्छ रूईकी फुरेरीसे बड़ी सरलतासे निकाला जा सकता है। यदि रोगीके कान तथा नलीमें सूजन हो तो उसे भीगनेसे बचाना चाहिये; जैसे पानीमें

तैरते समय वैसलीन या तेलसे भिगोई हुई रूई कानोंमें खोंस लेनी चाहिये। हमेशा ही स्नानके बाद कानोंको अच्छी तरह पोंछ कर सुखा लेना चाहिये।

जुकामसे सावधान रहिये—साधारण जुकाममें गला खराब हो जानेपर नमकीन पानीके गरारे दिनमें कई बार करने चाहिये, ताकि यह रोग आगे नाक-कानतक न फैलने पाये। अक्सर जुकाम बिगड़ कर हमारे कोमल कानोंको भी पीड़ित कर देता है, क्योंकि कानके अंदरका हिस्सा गलेके बाहरके हिस्सेके साथ जुड़ा हुआ है। सामान्यतः निगलनेकी क्रिया करते समय प्रत्येक बार वायुका आना-जाना बना रहता है, जिससे कर्णपटके दोनों ओर समान दबाव बना रहकर स्वरकी ध्वनि कम्पनके लिये सुग्रहीता बनी रहती है और जब जुकामके कारण हमारा गला भी पीड़ित हो तो दाब-क्रिया-विधिमें

कानकी रचना

गड़बड़ होनेसे कानमें दर्द हो जाना स्वाभाविक है। यदि आपको जुकाम हो तो बहुत जोरसे नाक कभी न छिनकें। ऐसा करनेसे रोगके कीटाणु मध्य कानतक पहुँच सकते हैं। मध्य कानमें दो नालियाँ जाती हैं—एक [illegible] और दूसरी नाक तथा गलेकी ओर। जुकाम होनेपर इसके कीटाणु नाक और गलेसे इस दूसरी नलीमें पहुँच जाते हैं, जिससे वहाँ सूजन होनेपर पीड़ा होने लगती है एवं लापरवाही करनेपर यह फोड़ा बन जाता है, जिसकी पीड़ाके कारण रातको ठीकसे नींद भी नहीं आ पाती और रोगी बेचैन पड़ा रहता है। कानमें प्रदाह होने, उसके बढ़ जाने और पूति दूषित (सेप्टिक) हो जानेसे कानका मार्ग बंद हो सकता है, जिससे उसमेंसे होकर वायुका आगमन बंद हो जाता है, जबकि इस प्रकारकी वायुका आगमन कर्णपटके दोनों ओर बाह्य कर्ण तथा मध्य कर्णमें समान दाब बनाये रखनेके लिये आवश्यक होता है। इससे बहरापन आ जाता है। मध्य कर्णमें पूति दूषित उत्पन्न होनेसे जब उसे निकलनेका मार्ग नहीं मिलता है तो उसके दबावसे कोमल झिल्ली फट जाती है और इस प्रकार कानसे जीर्ण स्राव उत्पन्न हो जाता है। मध्य कानमें मवादका बनना और इकट्ठा होना यदि शीघ्र नहीं रोका जाय तो वह कानके पीछेकी हड्डीतक पहुँचकर एक फोड़ेका रूप ले लेता है। इसमें यदि असावधानी की गयी अथवा गलत-सलत उपचार किया गया

तो इससे मस्तिष्कमें मवाद बनना प्रारम्भ हो जाता है। हो सकता है जिससे [illegible] कानकी भीतरी

खराबीसे हो, क्योंकि बारह नाड़ी-तन्तुओंकी जोड़ियाँ मस्तिष्कमेंसे निकलती हैं, उनमेंसे आठवाँ कानका संवेदवाहक नाड़ी तन्तु है। मलेरिया बुखारमें लगातार कुनैन-जैसी ओषधि लेनेसे भी चक्कर आना, कम सुनायी पड़ना आदि रोग घर कर जाते हैं। इसी तरह इन्फ्लूएन्जा और खसरा-जैसे छूतके रोगोंके साथ-साथ कानमें भी सूजन-जलन हो जाती है, जिससे कानमें असहनीय पीड़ा होने लगती है। बच्चोंके दाँतमें कष्ट होने या नया दाँत निकलते समय भी कानमें दर्द हो जाता है, बिना
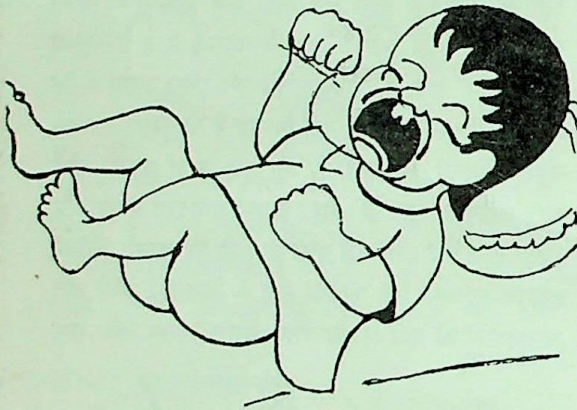
परीक्षा किये यह पता लगाना कठिन है कि कानकी पीड़ा सूजन और जलनकी अधिकताके कारण है या दाँतमें कष्ट होनेके कारण। बच्चेके कानमें पीड़ा होनेपर किसी योग्य चिकित्सकका परामर्श लेना चाहिये। बच्चों अथवा बड़ोंके कान-सम्बन्धी दोषोंको उत्पन्न न होने देना ही समस्याका सम्यक् समाधान है, क्योंकि एक बार कर्णप्रणालीके क्षतिग्रस्त होनेसे उसे फिरसे कार्यक्षम बना सकना अत्यन्त कठिन सिद्ध होता है। अतः सरल घरेलू एवं प्राकृतिक उपचारका सहारा लेकर स्वस्थ रहना चाहिये।

(क) सरल प्राकृतिक चिकित्सा

(१) मुँहको पूरा खोलने और बंद करनेकी प्रक्रियाको नित्य १५-२० बार प्रातः-सायं दोहरायें। इससे कानोंकी मांसपेशियोंमें लचीलापन आयेगा और कान स्वस्थ रहेंगे।

(२) भोजन करते समय चबा-चबाकर खायें। जिससे मुखकी मांसपेशियोंके साथ-साथ कानकी नसोंका भी व्यायाम हो जाय।

(३) गर्दनको दायें-बायें, आगे-पीछे तथा घड़ीके पेंडुलमकी तरह और चक्राकार घुमानेसे कानों एवं नेत्रोंकी नसोंमें लचीलापन आता है और यह क्रिया उनमें स्वस्थ रखनेकी क्षमता बनाये रखती है। यह व्यायाम नित्य दस मिनट मेरुदण्डको सीधा रखकर अवश्य करना चाहिये।

(४) कानके दर्दमें गर्म पानीकी थैलीको सूखे तौलियेमें लपेटकर तकियेकी तरह रखकर जिस कानमें दर्द, सूजन हो उसी कानको उसपर रखकर १५-२० मिनट तक लेटे रहें। यदि दोनों कानोंमें पीड़ा हो तो बारी-बारीसे इसी प्रकार दोनों ओर करना चाहिये। उस समय कानमें रूई खोंस लें।

(५) मध्य कानसे पीप आनेकी अवस्था (Both infection and inflammation) में गर्म और ठंडे पानीकी अलग-अलग थैली कानके पृष्ठ-भाग (जबड़ेकी रेखाके पीछे) के पास रखकर बारी-बारीसे गर्म और ठंडा सेंक दे सकते हैं।

(ख) कुछ घरेलू उपचार

चिकित्सकोंके अनुसार निम्न उपचार भी लाभदायक रहे हैं—

(१) बच्चे (शिशु) के कानमें दर्द हो तो माताका दूध कानमें टपकानेसे लाभ होता है।

(२) दूधकी भापसे कानको सेंकनेसे कानकी सूजन और दर्दमें आराम मिलता है।

(३) नीमके पत्तोंको पानीमें औटाकर उनका बफारा कानमें देनेसे कानका घाव और दर्द दूर होते हैं।

(४) लहसुनका रस २५ मि०ली० और सरसोंका शुद्ध तेल ५ मि०ली० दोनों मिलाकर पका लें। जब तेल मात्र शेष रह जाय तब ठंडा होनेपर छान लें तथा रातको सोते समय एक-एक बूँद कानमें डालें। इससे कानका दर्द, बहरापन आदि दोष दूर होते हैं।

(५) गोमूत्रको छानकर निथार लें और शीशीमें भर लें। नित्य चम्मचमें कुछ बूँदें जरा-सा गर्म कर लें, फिर कानको साफ करके सुहाती-सुहाती दो-एक बूँदें दोनों कानोंमें डालते रहें। कानका दर्द अथवा बहरापन निश्चित ठीक होगा।

(६) मदारका पीला पत्ता तोड़कर उसपर देशी घी चुपड़कर पत्तेको आगपर गरमाकर उसका सुहाता-सुहाता

गुनगुना रस कानमें टपका दें। अनुभूत प्रयोग है—दर्दमें लाभ होगा। इसपर एक लोकोक्ति भी है—

पीले पात मदारके, घृतका लेप लगाय।
गरम गरम रस डालिये, कर्ण-दर्द मिट जाय॥

(ग) यौगिक क्रियाएँ

(१) छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष सभीको 'नेति-क्रिया'की विधि समझकर नित्य करनी चाहिये। इससे जुकाम तो भागता ही है, कानका बहना भी बंद हो जाता है और बचपनतकका बहरापन तथा सायँ-सायँकी आवाज भी ठीक हो जाती है।

(२) हमारा स्वास्थ्य-कन्ट्रोल-केन्द्र हमारे भीतर ही है, ऐक्यु-प्रेशरका जानकार सही स्विच दबाकर रोगीका रोग दूर करता है। कानका रोग दूर करनेके लिये दिनमें नित्य ४५ मिनट, दोनों हाथोंद्वारा शून्य मुद्रा करनी चाहिये। अन्य उपचारके साथ-साथ भी यदि इसे विश्वासके साथ किया जाय तो यह मुद्रा हितकारी सिद्ध होगी।

विधि—चित्रमें बताये-अनुसार, बीचकी मध्यमा

शून्य मुद्रा

अँगुलीको अँगूठेकी गद्दीपर लगाकर, ऊपरसे इसे अँगूठेसे हलका दबानेसे शून्य-मुद्रा बनती है। इसे दायें और बायें हाथों, दोनोंहीसे कम-से-कम ४५ मिनट नित्य करनेसे कानका बहना, कम सुनना आदि दोष ठीक हो जाते हैं। ठीक होनेपर इसका अभ्यास बंद कर देना चाहिये। यह मुद्रा इच्छानुसार कभी भी कर सकते हैं।

(घ) निषेध

कानके रोगीको निम्न आहार-विहारका सेवन हानिकारक है—

(१) ठंडा स्नान, ठंडी हवा, पंखेकी सीधी हवा आदि।
(२) तैराकी और सिरको भिगोकर स्नान।
(३) अधिक जागरण तथा अधिक वाचालता।
(४) कोलाहलपूर्ण वातावरण—यन्त्रोंका शोर-शराबा आदि।
(५) अत्यधिक शीतलता प्रदान करनेवाले बर्फ आदिसे प्रयोगयुक्त पदार्थ, चिकनाईवाले व्यञ्जन, बासी भोजन, अधिक खट्टे एवं मिर्च-मसालोंसे तले हुए खाद्य पदार्थ आदि।
(६) वातानुकूलित वातावरण।

उपसंहार

बचपनसे ही प्रतिदिन कानोंमें एक-एक बूँद तेल डालते रहनेसे कान सदा नीरोग रहते हैं। श्रवणशक्तिको सदाके लिये सशक्त बनाये रखनेके हेतु नित्य प्रातः धूप-सेवन करें ताकि कानोंपर भी सूर्यका सुहाता-सुहाता प्राकृतिक सेंक होता रहे। दोषपूर्ण आहार-विहारसे बचें और स्वस्थ बने रहें।

तुम न रूठना देव !

तुम न रूठना देव ! भले ही सब दुनियाँ मुख मोड़े।
तुम न रूठना देव ! भले ही स्वजन कुटिल हो हेरे॥
तुम न रूठना देव ! भले ही लक्ष्मी भी सँग छोड़े।
तुम न रूठना देव ! भले ही निविड़ कालिमा घेरे॥
तुम न रूठना देव ! और यह सब सह लूँगा प्रमुदित मन।
केवल स्मृतिमें रहने देना—निपुण पात्रका नाट्यकरण॥

—बालकृष्ण बलदुवा

यह कैसी मानवता है ?

श्रीमद्भागवत महापुराणके प्रथम स्कन्धमें यह प्रसंग आया है कि गोरूपधारिणी धरणी माता तथा धर्मरूपी वृषभको कलियुगरूपी शूद्र हाथमें डंडा लेकर ताड़ना दे रहा है और धर्मात्मा महाराज परीक्षित् शूद्रकी ताड़नासे गोरूपिणी पृथिवी तथा धर्मरूपी वृषभकी रक्षा करते हैं। यह मर्मस्पर्शी प्रसंग आज हम प्रतिदिन देख रहे हैं, परंतु हमारे हृदयमें न तो महाराज परीक्षित्-जैसी दया है और न ही अन्यायके विरोध करनेका साहस। विशेष दुःख तो इस बातका है कि आजके अधिकांश व्यापारी गोपालक 'हिन्दू' ग्वाले पैसोंकी लालचसे दूध बढ़ानेके लिये गौओंके प्रति जो अत्याचार कर रहे हैं और शेष हिन्दू प्रजा इसे चुपचाप देखती जा रही है। यह किस प्रकारका हिन्दुत्व है ? यह कैसी गो-सेवा है ?

क्या आप जानते हैं कि जों दूध हम पीते हैं, अपने बच्चोंको पिलाते हैं, वह कितना हानिकारक बनता जा रहा है ? व्यापारी ग्वालोंका प्रिय इंजेक्शन 'ओक्सिटोसिन' एक ऐसी ओषधि है जो कि 'हार्मोन' से बनती है। प्रसवके समय वह इंजेक्शन महिलाओंको दिया जाता है, जिससे मातामें प्रसवका वेग तीव्रतर हो जाता है और बालकका जन्म शीघ्र होनेमें सहायता मिलती है। पशुके उपयोगके लिये यह नहीं है।

गायको जब यह इंजेक्शन दिया जाता है, तब दूध दूहना आसान बन जाता है। ग्वालोंकी यह गलतफहमी है कि इस इंजेक्शनसे दूधकी मात्रा बढ़ती है। ग्वालोंको यह भी ज्ञात नहीं या फिर उन्हें परवाह नहीं कि इससे दूध पीते शिशुओंकी और आम जनताकी भी कितनी हानि हो रही है। 'ओक्सिटोसिन' की बनावटमें जिस हार्मोनका उपयोग किया जाता है, उसपर इंग्लैंड आदि अनेक देशोंमें सरकारी प्रतिबन्ध सख्तीसे लगाये गये हैं। प्रतिबन्ध हमारी सरकारसे भी है, परंतु अमलमें सख्तीकी कमी है। प्रतिबन्धका कारण यह है कि इसके व्यवहारसे गायके दूध एवं मांसमें टोक्सिन (विष) बढ़ जाता है। इस टोक्सिनका असर आँखोंपर अधिक पड़ता है तथा कैंसर-जैसे भयानक रोगोंकी सम्भावना अत्यधिक बढ़ जाती है। गायको हर इंजेक्शनके बाद प्रसवकी असह्य वेदना भी होती है। १-२ वर्षोंमें गर्भाधान असम्भव हो जाता है और उसे कसाईके हाथों बेंच दिया जाता है। यह वही गाय है, जिसकी हम विशेष उत्सवोंपर पूजा करते हैं, जो अपने बच्चेको भूखा रखकर हमारे बच्चोंको दूध देती है। एक ओर पूजा और दूसरी ओर उसपर अत्याचार, यह मानवका कैसा स्वभाव बनता जा रहा है, इस विरोधाभासको रोकना होगा। इतना ही नहीं, लोभी ग्वाले बछड़ीको तो बड़ा होने देते हैं, लेकिन बछड़े प्रायः भूखे मरते हैं।

क्या इन प्राणियोंकी आह हमें नहीं लगेगी ? यदि हमारे हृदयमें धर्मके प्रति, ईश्वरके प्रति, मानवताके प्रति तनिक भी निष्ठा है तो हम ऐसे अत्याचारोंको चुपचाप कैसे सह रहे हैं ? विचारनेकी बात है—जो व्यक्ति दया नहीं करेगा, वह दयाकी, कृपाकी आशाका अधिकारी कैसे हो सकता है ? क्या हम इतने अंधे हो गये हैं कि स्वयंकी हानि और गोमातापर होते अत्याचार हमें बुरे नहीं लगते ? या फिर इतने डरपोक हो गये हैं कि कुछ कहने-करनें लायक भी नहीं रहे ? यदि ऐसा है तो लानत है हमपर, और हमारी समझदारीपर। वर्ना हर व्यक्ति डटकर 'ओक्सिटोसिन' के विरुद्ध आवाज उठा सकता; सरकारी स्तरपर, सामाजिक स्तरपर और व्यक्तिगत रूपसे भी। इसमें हमारा, हमारे बच्चोंका, समाजका और राष्ट्रका—सबका हित है और इसीमें हमारी निष्ठाकी रक्षा भी है। ऐसे अधर्म, ऐसे अत्याचारोंका विरोध करना प्रत्येक मानवका कर्तव्य है फिर जिसके रग-रगमें गोमाताका दूध बहता है, जिसके शरीरकी वृद्धि गोमाताके बलिदानसे हुई है, जिसपर धर्मकी छाया है, वही यदि तुच्छ स्वार्थकी भ्रान्तिमें ऐसे अमानवीय, पाशविक तथा सर्वथा निन्द्य व्यवहार करेगा तो इससे शर्मनाक बात एवं पापकर्म और कौन हो सकता है ? यह कैसा हिन्दुत्व है ? यह कैसी मानवता है ?

'जैसे मजबूत रस्सेसे बाँध देनेपर पशु कहीं भी भागकर नहीं जा सकता, वैसे ही तमोगुणके प्रमादालस्यनिद्रारूपी रस्सेसे बँधा मनुष्य बँधा-बँधा ही मर जाता है, यह अनुभवी महापुरुषोंका कथन है।'—श्रीजयदयालजी गोयन्दका

('परमशान्तिका मार्ग भाग-१' पुस्तकसे)

अमृत-बिन्दु

जो परिस्थिति सामने आ जाय, उसीमें प्रसन्न रहना 'भजन' है।

× × ×

वास्तविक उन्नति है—स्वभाव शुद्ध होना।

× × ×

मनको स्थिर करना मूल्यवान् नहीं है, प्रत्युत स्वरूपकी स्वतःसिद्ध निरपेक्ष सत्ताका अनुभव करना मूल्यवान् है।

× × ×

याद करो तो भगवान्‌को याद करो, काम करो तो सेवा करो।

× × ×

हम जितना ही जड़ताका आदर करते हैं, उतना ही हमारे द्वारा परमात्माका निरादर होता है।

× × ×

दरिद्रता मिटानी हो तो अपनी इच्छाओंको समाप्त कर दो।

× × ×

अन्यायपूर्वक कमाया धन काममें आ जाय—यह नियम नहीं है; परंतु उसका दण्ड भोगना पड़ेगा—यह नियम है।

× × ×

भगवान्‌में प्रेम होना भी सत्संग है और नाशवान्‌का प्रेम (मोह) छूटना भी सत्संग है।

× × ×

भगवद्भक्तको देवता कहना उसकी निन्दा है; क्योंकि उसका दर्जा देवताओंसे भी बहुत ऊँचा होता है।

× × ×

धर्मके लिये धन नहीं चाहिये, मन चाहिये।

× × ×

मनुष्यको वस्तु गुलाम नहीं बनाती, उसकी इच्छा गुलाम बनाती है।

× × ×

शरीरका सदुपयोग केवल संसारकी सेवामें ही है।

× × ×

हमारी किसी भी क्रियासे किसीको किंचिन्मात्र भी दुःख न हो—यह भाव 'सेवा' है।

× × ×

देखनेमें तो ऐसा दीखता है कि समय जा रहा है, पर वास्तवमें शरीर जा रहा है।

× × ×

द्वैत और अद्वैत केवल मान्यता है। तत्त्वमें न द्वैत है, न अद्वैत।

× × ×

भगवान् सर्वसमर्थ होते हुए भी हमारेसे दूर होनेमें असमर्थ हैं।

× × ×

अन्तःकरणमें रुपयोंका महत्त्व होनेसे ही रुपयोंके त्यागमें विशेषता दीखती है और उनके त्यागका अभिमान आता है। अतः त्यागके अभिमानमें रुपयोंका ही महत्त्व है।

× × ×

सुनना चाहते हैं, इसीलिये न सुननेका दुःख होता है। देखना चाहते हैं, इसीलिये न दीखनेका दुःख होता है। बल चाहते हैं, इसीलिये निर्बलताका दुःख होता है। जवानी चाहते हैं, इसीलिये वृद्धावस्थाका दुःख होता है। तात्पर्य है कि वस्तुके अभावसे दुःख नहीं होता, प्रत्युत उसकी चाहनासे, उसके अभावका अनुभव करनेसे दुःख होता है।

व्रत-परिचय

[गताङ्क पृष्ठ-सं० ७२२ से आगे]

(माघके व्रत)

कृष्णपक्ष

माघस्नान (नानापुराणादि)—माघ, कार्तिक और वैशाख महापुनीत महीने माने गये हैं। इनमें तीर्थस्थानादिपर या स्वदेशमें रहकर नित्यप्रति स्नान-दानादि करनेसे अनन्त फल होता है। यदि माघमें मलमास[1] हो और स्नान निष्काम-भावसे केवल धर्म-दृष्टि रखकर किया जाता हो तो उसकी पूर्ति ३० दिनमें कर देनी चाहिये और यदि सकाम-भावसे किया जाता हो तो दोनों माघोंके ६० दिनतक स्नान करना चाहिये। स्नानका समय सूर्योदयसे पहले श्रेष्ठ है। उसके बाद जितना विलम्ब हो उतना ही निष्फल होता है। स्नानके लिये काशी और प्रयाग उत्तम माने गये हैं। वहाँ न जा सके तो जहाँ भी स्नान करे, वहीं उनका स्मरण करे अथवा निम्न श्लोकों—

पुष्करादीनि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा।
आगच्छन्तु पवित्राणि स्नानकाले सदा मम॥
हरिद्वारे कुशावर्ते बिल्वके नीलपर्वते।
स्नात्वा कनखले तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते॥
अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती ज्ञेयाः सप्तैता मोक्षदायिकाः॥
गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् संनिधिं कुरु॥

—का उच्चारण करे। अथवा वेगसे[2] बहनेवाली किसी भी नदीके जलसे स्नान करे अथवा रातभर छतपर रखे हुए जलपूर्ण घटसे स्नान करे। अथवा दिनभर सूर्य-किरणोंसे तपे हुए जलसे स्नान करे। स्नानके आरम्भमें **'आपस्त्वमसि देवेश ज्योतिषां पतिरेव च। पापं नाशय मे देव वाङ्मनःकर्मभिः कृतम्॥'** से जलकी और **'दुःखदारिद्र्यनाशाय श्रीविष्णोस्तोषणाय च। प्रातःस्नानं करोम्यद्य माघे पापविनाशनम्।'** से ईश्वरकी प्रार्थना करे और स्नान करनेके पश्चात् **'सवित्रे प्रसवित्रे च परं धाम जले मम। त्वत्तेजसा परिभ्रष्टं पापं यातु सहस्रधा॥'** से सूर्यको अर्घ्य देकर हरिका पूजन या स्मरण करे। माघस्नानके लिये ब्रह्मचारी, गृहस्थी, संन्यासी[3] और वनवासी—चारों आश्रमोंके; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्णोंके; बाल, युवा और वृद्ध—तीनों अवस्थाओंके स्त्री, पुरुष या नपुंसक जो भी हों, सबको आज्ञा है; सभी यथानियम नित्यप्रति माघस्नान कर सकते हैं। स्नानकी अवधि[4] या तो पौष शुक्ल एकादशीसे माघ शुक्ल एकादशीतक या पौष शुक्ल पूर्णिमासे माघ शुक्ल पूर्णिमातक अथवा मकरार्कमें (मकरराशिपर सूर्य आये, उस दिनसे दूसरी राशिपर जाय, उस दिनतक) नित्य स्नान करे और उसके अनन्तर यथावकाश मौन रहे। भगवान्‌का भजन या यजन करे। ब्राह्मणोंको अवारित[5] (विना रोक) नित्य भोजन कराये। कम्बल, मृगचर्म, रत्न, कपड़े (कुरता, चादर, रूमाल, कमीज, टोपी) उपानह (जूते), धोती और पगड़ी आदि दे। एक या एकाधिक ३० द्विजदम्पती (ब्राह्मण-ब्राह्मणी) के जोड़ेको षट्रस भोजन करवाकर **'सूर्यो मे प्रीयतां देवो विष्णुमूर्तिर्निरञ्जनः।'** से सूर्यकी प्रार्थना करे। इसके बाद उनको अच्छे वस्त्र, सप्तधान्य

१- मासोपवासचान्द्रायणादि तु मलमास एव समापयेत्।
काम्यानां तत्र समाप्तिनिषेधान्मासद्वयं प्रातःस्नानं तन्नियमाश्च कर्तव्याः। (दीपिकायाम्)

२-सरित्तोयं महावेगं नवकुम्भस्थितं तथा। वायुना ताडितं रात्रौ गङ्गास्नानसमं स्मृतम्॥

३-ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः। बालवृद्धयुवानश्च नरनारीनपुंसकाः॥
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्राः ………………। स्नात्वा माघे शुभे तीर्थे प्राप्नुवन्तीप्सितं फलम्। (भविष्ये)
सर्वेऽधिकारिणो ह्यत्र विष्णुभक्तौ यथा नृप। (पाद्मे)

४-एकादश्यां शुक्लपक्षे पौषमासे समारभेत्। द्वादश्यां पौर्णमास्यां वा शुक्लपक्षे समापनम्॥ (ब्राह्मे)
'पुण्यान्यहानि त्रिंशत्तु मकरस्थे दिवाकरे।' (विष्णु)

५- [illegible]

और तीस मोदक दे। और स्वयं निराहार, शाकाहार, फलाहार या दुग्धाहार व्रत अथवा एकभुक्त व्रत करे। इस प्रकार काम, क्रोध, मद, मोहादि त्यागकर भक्ति, श्रद्धा, विनय-नम्रता, स्वार्थत्याग और विश्वास-भावके साथ स्नान करे तो अश्वमेधादिके समान फल होता है और सब प्रकारके पाप-ताप तथा दुःख दूर हो जाते हैं।

(२) वक्रतुण्डचतुर्थी (भविष्योत्तर)—माघ कृष्ण चन्द्रोदयव्यापिनी चतुर्थीको 'वक्रतुण्डचतुर्थी' कहते हैं। इस व्रतका आरम्भ **'गणपतिप्रीतये संकष्टचतुर्थीव्रतं करिष्ये'**—इस प्रकार संकल्प करके करे। सायंकालमें गणेशजीका और चन्द्रोदयके समय चन्द्रका पूजन करके अर्घ्य दे। इस व्रतको माघसे आरम्भ करके हर महीनेमें करे तो संकटका नाश हो जाता है।

(३) संकष्टचतुर्थी (व्रतोत्सव)—यह प्रशस्त व्रत उपर्युक्त वक्रतुण्डचतुर्थीव्रतके समान किया जाता है।

(४) सर्वाप्तिसप्तमी (हेमाद्रि)—माघ कृष्ण सप्तमीको स्नान-दानादि करनेसे इच्छानुसार फल मिलता है।

(५) कृष्णैकादशी (षट्तिला एकादशी) (हेमाद्रि)—माघ कृष्ण एकादशीको प्रातः स्नान करके 'श्रीकृष्ण' इस मन्त्रके ८, २८, १०८ या १,००० जप करे। उपवास रखे। रात्रिमें जागरण और हवन करे। भगवान्का पूजन करे। और **'सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु महापुरुषपूर्वज। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं लक्ष्म्या सह जगत्पते॥'**—इस मन्त्रसे अर्घ्य दे। यह 'षट्तिला' एकादशी है। इसमें (१) तिलोंके जलसे स्नान करे, (२) पिसे हुए तिलोंका उबटन करे, (३) तिलोंका हवन करे, (४) तिल मिला हुआ जल पीये, (५) तिलोंका दान करे और (६) तिलोंके बने (मोदक, बर्फी या तिलसकरी आदि) का भोजन करे तो पापोंका नाश हो जाता है।

इस व्रतकी कथा संक्षेपमें इस प्रकार है—प्राचीन कालमें भगवान्की परम भक्त एक ब्राह्मणी थी; वह भगवत्सम्बन्धी उपवासव्रत रखती, भगवान्की विधिवत् पूजा करती और नित्य-निरन्तर भगवान्का स्मरण किया करती थी। कठिन व्रत करने और पतिसेवा एवं घरकी सम्हाल रखने आदिसे उसका शरीर सूख गया था। किंतु अपने [illegible] निमित्त किसीको एक दाना भी नहीं दिया था। एक दिन स्वयं भगवान्ने कपालीका रूप धारण कर उससे भिक्षाकी याचना की, परंतु उसने उन्हें भी कुछ नहीं दिया। अन्तमें कपालीके ज्यादा बड़बड़ानेसे उसने मिट्टीका एक बहुत बड़ा ढेला दिया तो भगवान् उसीसे प्रसन्न हो गये और ब्राह्मणीको वैकुण्ठका वास दिया। परंतु वहाँ मिट्टीके परम मनोहर मकानोंके सिवा और कुछ भी नहीं था। तब उसने भगवान्की आज्ञासे षट्तिलाका व्रत किया और उसके प्रभावसे उसको सब कुछ प्राप्त हुआ।

(६) माघी अमा (वायु, देवी, ब्रह्म, हारीत, व्यासादि)—अमा और पूर्णिमा—ये दोनों पर्वतिथियाँ हैं। इस दिन पृथ्वीके किसी-न-किसी भागमें सूर्य या चन्द्रमाका ग्रहण हो ही जाता है। इससे धर्मप्राण हिंदू इस दिन दान-पुण्यादिके सिवा अन्य काम नहीं करते।....हिमपिण्ड चन्द्रका आधा भाग काला और आधा सफेद है। सफेदपर सूर्यकिरण पड़नेसे वह प्रकाशित होता है।....जब चन्द्रमा क्षीण होकर दीखता नहीं तो उस तिथिको अमा कहते हैं और पूर्ण चन्द्रसे पूर्णिमा होती है।....जिस अमामें चन्द्रकी कुछ सफेदी हो, वह 'सिनीवाली'— और कोयलके शब्द करने जितनी हो वह 'कुहू' होती है। इसी प्रकार पूर्णचन्द्रकी पूर्णिमा 'राका' और कलामात्र कमकी 'अनुमती' होती है। सिनीवाली और कुहूके भेदसे अमा तथा राका अनुमतीके भेदसे पूर्णिमा दोनों दो प्रकारकी हैं। ....चन्द्रमा सूर्यसे नीचा है; अतः पूर्णिमाको इसका काला भाग और अमाको सफेद भाग सूर्यकी तरफ रहनेसे पृथ्वीपर किये गये दान, पुण्य और भोजनादिके वाष्पसम्भूत अंश सूर्यकी किरणोंसे आकर्षित होकर चन्द्रमण्डलमें (जहाँ पितृगण रहते हैं) चले जाते हैं। इसी कारण अमाको पितृ-श्राद्धादि करनेका विधान किया गया है।.... अमाके दिन चन्द्रका प्रकाशमान भाग सूर्यके आगे आ जानेसे सूर्यग्रहण और पूर्णिमाको नीचे गये हुए सूर्यसे उठी हुई पृथ्वीकी छाया चन्द्रके सामने आ जानेसे चन्द्रग्रहण होता है।....'लोकान्तरमें कहीं भी ग्रहण हुआ होगा'—इस सम्भावनासे धर्मज्ञ मनुष्य अमा और पूर्णिमाको स्नान-दानादि पुण्य कर्म किया करते हैं।....ग्रहण तब होता है जब सूर्य, चन्द्र और पृथ्वी (तीनों) एक सीधमें आते हैं; अन्यथा नहीं

होता।····व्रतादिमें अमावस्या परविद्धा (प्रतिपदायुक्त) लेनी चाहिये। चतुर्दशीयुक्त यानी पूर्वविद्धा अमा निषिद्ध मानी गयी है।····**'पूर्वाह्णो वै देवानाम्, मध्याह्नो मनुष्याणामपराह्णः पितॄणाम्'** के अनुसार दिनको (लगभग १०-१० घड़ीके) तीन भागोंमें विभाजित मानकर जप, ध्यान और उपासना आदिके कार्य प्रथम तृतीयांश (लगभग १० घड़ी दिन चढ़ेतक) करने चाहिये। संस्कारादि तथा आयुर्बल-वित्तादि-प्राप्तिके प्रयोगादि 'मनुष्यकार्य' दूसरे तृतीयांश (मध्य दिनकी लगभग १० घड़ी) में करने चाहिये और श्राद्ध, तर्पण एवं हंतकारादि 'पितृकार्य' तीसरे तृतीयांश (दिनास्तसे पहलेतककी लगभग १० घड़ी) में करने चाहिये।

(७) विधिपूजा (भविष्योत्तर)—माघी अमाको प्रतिदिनके स्नान-दानादिके पश्चात् वस्त्राच्छादित वेदीपर वेद-वेदाङ्गभूषित ब्रह्माजीका गायत्रीसहित पूजन करे और नवनीत (मक्खन) की देनेवाली गौका तथा सुवर्ण, छत्र, वस्त्र, उपानह, शय्या, अञ्जन और दर्पणादि **'स्थानं स्वर्गेऽथ पाताले यन्मर्त्ये किञ्चिदुत्तमम्। तदवाप्नोत्यसंदिग्धं पद्मयोनेः प्रसादतः॥'** इस मन्त्रसे निवेदन करके ब्राह्मणको दे और **'यत्किञ्चिद् वाचिकं पापं मानसं कायिकं तथा। तत् सर्वं नाशमायाति युगादितिथिपूजनात्॥'** को स्मरण कर शुद्ध भावसे सजातियोंसहित भोजन करे।

(८) अर्धोदय (महाभारत)—माघ कृष्ण अमावस्याको रविवार, व्यतीपात और श्रवण हो तो 'अर्धोदय' योग होता है। इस योगमें स्कन्दपुराणके लेखानुसार सभी स्थानोंका जल गङ्गातुल्य हो जाता है और सभी ब्राह्मण ब्रह्मसंनिभ शुद्धात्मा हो जाते हैं। अतः इस योगमें यत्किंचित् किये हुए स्नान-दानादिका फल भी मेरुसमान होता है।

(९) पात्रदान (स्कन्दपुराण)—अर्धोदय योगवाली अमावस्याको साठ, चालीस या पचीस मासा सुवर्णका अथवा चाँदीका पात्र बनाकर उसमें खीर भरे और पृथ्वीपर अक्षतोंका अष्टदल लिखकर उसपर ब्रह्मा, विष्णु और शिवस्वरूप उपर्युक्त पात्रको स्थापित करके गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करे और फिर सुपठित ब्राह्मणको दे तो समुद्रान्त पृथ्वीदान करनेके समान फल होता है। यह अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि इस व्रतमें गोदान, शय्यादान और जो भी देय द्रव्य हों तीन-तीन दे। अर्धोदय योगके अवसरपर सत्ययुगमें वसिष्ठजीने, त्रेतामें रामचन्द्रजीने, द्वापरमें धर्मराजने और कलियुगमें पूर्णोदर (देवविशेष) ने अनेक प्रकारके दान, धर्म किये थे; अतः धर्मज्ञ सत्पुरुषोंको अब भी अवश्य करना चाहिये। (क्रमशः)—पं० श्रीहनूमान्जी शर्मा

क्या सीखे ?

सर्वत्रात्मेश्वरान्वीक्षां कैवल्यमनिकेतताम्। विविक्तचीरवसनं संतोषं येन केनचित्॥

सर्वत्र अर्थात् समस्त देश, काल और वस्तुओंमें चेतनरूपसे आत्मा और नियन्तारूपसे ईश्वरको देखना, एकान्त-सेवन, यही मेरा घर है—ऐसा भाव न रखना, गृहस्थ हो तो पवित्र वस्त्र पहनना और त्यागी हो तो फटे-पुराने पवित्र चिथड़े—जो कुछ प्रारब्धके अनुसार मिल जाय, उसीमें संतोष करना सीखे।

श्रद्धां भागवते शास्त्रेऽनिन्दामन्यत्र चापि हि। मनोवाक्कर्मदण्डं च सत्यं शमदमावपि॥

भगवान्‌की प्राप्तिका मार्ग बतलानेवाले शास्त्रोंमें श्रद्धा और दूसरे किसी भी शास्त्रकी निन्दा न करना, प्राणायामके द्वारा मनका, मौनके द्वारा वाणीका और वासनाहीनताके अभ्याससे कर्मोंका संयम करना, सत्य बोलना, इन्द्रियोंको अपने-अपने गोलकोंमें स्थिर रखना और मनको कहीं बाहर न जाने देना सीखे।

एवं कृष्णात्मनाथेषु मनुष्येषु च सौहृदम्। परिचर्यां चोभयत्र महत्सु नृषु साधुषु॥

जिन संत पुरुषोंने सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णका अपने आत्मा और स्वामीके रूपमें साक्षात्कार कर लिया हो, उनसे प्रेम और स्थावर-जंगम दोनों प्रकारके प्राणियोंकी सेवा, विशेष करके मनुष्योंकी, मनुष्योंमें भी परोपकारी सज्जनोंकी और उनमें भी भगवत्प्रेमी संतोंकी करना सीखे। (श्रीमद्भागवत स्कन्ध ११)

पढ़ो, समझो और करो

(१)

श्रीमद्भागवत महापुराणकी विलक्षण महिमा*

दिसम्बर सन् १९६९ ई० में प्रसिद्ध तीर्थ वाराणसीमें परमपूज्यपाद श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य गोवर्धनपीठाधीश्वर अनन्तश्रीविभूषित श्रीस्वामी श्रीनिरञ्जनदेवतीर्थजी महाराज पधारे थे। उन्होंने श्रीमद्भागवत महापुराणके सप्ताहकी अद्भुत महिमाके सम्बन्धकी अपने स्वयंकी जाँच की हुई एक महान् आश्चर्यजनक सत्य घटना सुनायी थी, जिसे मैंने आपके श्रीचरणोंमें बैठकर अपनी डायरीमें नोट कर लिया था। वह घटना नीचे दी जा रही है। आशा है, पाठक इसे बड़े ही ध्यानसे पढ़नेकी कृपा करेंगे।

मैंने पूज्य महाराजजीसे पूछा—

प्रश्न—पूज्य महाराजजी ! परलोकगत आत्मा भी पुराण सुननेकी माँग करती है, क्या यह बात सत्य है ?

पूज्य जगद्गुरुजी—बिलकुल सत्य है।

प्रश्न—क्या इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण है ?

पूज्य जगद्गुरुजी—ऐसी कितनी ही बिलकुल सत्य घटनाएँ हैं कि जो हमने स्वयं देखी हैं।

प्रश्न—महाराजजी ! क्या आप कोई घटना सुनानेकी कृपा करेंगे ?

पूज्य जगद्गुरुजी—घटनाएँ तो बहुत-सी हैं। आज हम आपको एक बिलकुल सत्य घटना सुनाते हैं, जो इस प्रकार है—

यह कोई पुरानी या सुनी-सुनायी बात नहीं है, अपितु अभी नयी घटी एक बिलकुल सत्य घटना है।

उत्कल देशके विख्यात कटक नगरमें एक गुलाबराय माडूमल नामक सुप्रसिद्ध फर्म है। 'भारतमाता गुडाकू फैक्ट्री'की वह फर्म मालिक है। लगभग तीन वर्ष हुए, गुलाबराय माडूमलकी एक विवाहिता युवती पुत्रीका शरीरान्त हो गया था और वह मरकर भूतयोनिको प्राप्त हो गयी। उसकी एक चचेरी बहन थी, जो आयुमें उससे बड़ी थी, भूतयोनिप्राप्त वह आत्मा अपनी उस चचेरी बहनको परेशान करने लगी। उसके बन्धु-बान्धवों और घरवालोंने तथा आजकलके अंग्रेजी पढ़े-लिखे बुद्धिमान् लोगोंने इसे हिस्टीरियाकी बीमारी बताकर डॉक्टरोंसे इलाज करानेकी सलाह दी। घरवालोंने सबकी सलाह मानकर अच्छे-से-अच्छे प्रमुख डॉक्टरोंद्वारा उसकी चिकित्सा करायी। चिकित्सामें अपने हजारों रुपये खर्च किये, पर लाभ कुछ भी नहीं हुआ। उस चचेरी बहनकी बीमारी घटनेके बजाय और भी ज्यादा बढ़ती चली गयी। जब अपने शहरके बड़े-बड़े डॉक्टरोंसे भी उसे कोई लाभ प्रतीत नहीं हुआ तो उन डॉक्टरोंकी और अच्छे आदमियोंकी सलाह मानकर उसके घरवाले उसे इलाजके लिये कलकत्ता, बम्बई आदि बड़े-बड़े शहरोंमें ले गये और वहाँके बड़े-से-बड़े प्रतिष्ठित डॉक्टरोंसे उसका इलाज कराया गया। कहा जाता है कि इस इलाजमें उनके पचीस-पचास हजार रुपये खर्च हो गये। खुलकर पैसा खर्च करनेपर भी बीमारी एक प्रतिशत भी कम नहीं हुई, वरं वह बढ़ती चली गयी। अब तो उसके घरवाले ही नहीं, अपितु अड़ोस-पड़ोसके लोग भी परेशान हो गये और समझ नहीं पाये कि वास्तवमें क्या बीमारी है।

जब घरवाले इलाज कराते-कराते थक गये और चारों ओरसे निराश हो गये तो एक दिन उस चचेरी बड़ी बहनके शरीरमें आकर परलोकगत छोटी बहनकी आत्माने कहा— 'इसे बीमारी कुछ भी नहीं है। यह बहन मेरे कारण परेशान है और मैं स्वयं भी इस समय बड़ी परेशान हूँ। अपने किसी पूर्वजन्मके पापोंके फलस्वरूप मैं इस समय पिशाच-योनिके दुःख भोग रही हूँ। जबतक मेरी इस पिशाच-योनिसे मुक्ति नहीं होगी, तबतक मेरी इस बहनका लाख इलाज करानेपर भी रोगसे छुटकारा नहीं होगा और इसे सुख-शान्ति नहीं मिलेगी।'

घरवालोंके यह प्रश्न करनेपर कि 'तुम्हारी इस पिशाच-योनिसे मुक्ति होनेका और तुम्हें शान्ति प्राप्त होनेका साधन क्या है ? वह हमें बताओ तो हम उसके अनुसार करें। उत्तरमें पिशाच-योनिको प्राप्त उस परलोकगत आत्माने कहा कि 'मेरी मुक्ति और मेरी सद्गतिका एकमात्र उपाय है—

* परमपूज्यपाद श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य गोवर्धनपीठाधीश्वर श्रीस्वामी श्रीनिरंजनदेवतीर्थजी महाराजके श्रीमुखसे सुनी बिलकुल सत्य घटना।

'श्रीमद्भागवत-सप्ताह-श्रवण'। श्रीमद्भागवत-सप्ताह-श्रवणके अतिरिक्त आप चाहे लाखों रुपये खर्च करें, न तो इसका इलाज होगा, न मुझको ही इस प्रेतयोनिसे छुटकारा मिलेगा। इसलिये यदि आप चाहते हैं कि मेरी बहन भी रोगमुक्त हो जाय और मुझे भी इस पिशाच-योनिसे छुटकारा मिल जाय तथा मुझे सद्गति प्राप्त हो जाय तो आप शीघ्र-से-शीघ्र विद्वान् ब्राह्मणको बुलाकर उनके द्वारा हमारे कल्याणके निमित्त श्रीमद्भागवत-सप्ताह-श्रवणका आयोजन कीजिये।'

उसके घरवालोंने उसी वर्ष संवत् २०२६ भाद्रपदमें उसके कथनानुसार एक सनातनधर्मी विद्वान् ब्राह्मणको बुलाकर उनके द्वारा श्रीमद्भागवत-सप्ताह-श्रवण प्रारम्भ करा दिया।

श्रीमद्भागवत-सप्ताहकी कथा तो प्रारम्भ हो गयी, किंतु घरवाले तथा वे कथावाचक पण्डितजी महाराज वहाँपर बाँस गाड़ना भूल गये, जो श्रीमद्भागवत-सप्ताहके शुभ अवसरपर एक बाँस गाड़नेकी बहुत प्राचीन शास्त्रीय प्रथा है। कहा जाता है कि परलोकगत आत्मा उसपर बैठकर कथा सुनती है। उस परलोकगत आत्माको यह बात बड़ी खटकी और उसने फिर अपनी उस चचेरी बड़ी बहनके शरीरमें प्रवेश करके कहा कि 'आपने श्रीमद्भागवत-सप्ताह-श्रवण कराना तो प्रारम्भ अवश्य करा दिया है, किंतु यहाँपर मेरे बैठनेके लिये श्रीमद्भागवत-सप्ताहके नियमके अनुसार बाँस नहीं गाड़ा, जिसपर बैठकर मैं श्रीमद्भागवत-सप्ताहका श्रवण करती। सबको पता है कि उस बाँसपर बैठकर प्राचीन कालमें धुन्धुकारी नामक प्रेतने गायके पेटसे पैदा हुए गोकर्ण नामक अपने भाईसे श्रीमद्भागवत-सप्ताह सुनकर मुक्ति प्राप्त की थी। फिर बताओ, मैं कहाँपर बैठकर श्रीमद्भागवतकी परम पावन कथा सुनकर मुक्ति-लाभ करूँ?'

अब तो उस परलोकगत आत्माकी इस शास्त्रीय बातको सुनकर सबने अपनी गलती स्वीकार की और वहाँपर बाँस गड़ाया। किंतु बाँसके गाड़नेपर भी एक भूल यह रह गयी कि बाँसके ऊपर जो कपड़ा लपेटा जाता है, वह कपड़ा लपेटना भूल गये।

परलोकगत आत्माने पुनः अपनी चचेरी बड़ी बहनके शरीरमें आकर कहा—'आपने इस बाँसपर कपड़ा नहीं लपेटा है, फिर भला इस नंगे बाँसपरं मैं किस प्रकार बैठ सकती हूँ? नंगे बाँसपर बैठनेसे यह बाँस मेरे चुभता है, इसलिये तुरंत उस बाँसपर कपड़ा लपेट दो जिससे वह बाँस चुभे नहीं और मैं शान्तिसे बैठकर श्रीमद्भागवतका सप्ताह श्रवण कर सकूँ?' तब घरवालोंने तुरंत उस नंगे बाँसपर कपड़ा लपेटा और अपनी गलती स्वीकार की तथा उस आत्मासे इस भूलके लिये क्षमा माँगी।

इस बातकी चर्चा अड़ोस-पड़ोस और टोले-मोहल्लेमें सर्वत्र फैल गयी। सभी लोग सुनकर बड़े आश्चर्यचकित रह गये। अब तो श्रीमद्भागवत-सप्ताह-श्रवण करनेके लिये और जीवित व्यक्तिके द्वारा कही गयी परलोकगत आत्माकी बातें सुननेके लिये हजारों मनुष्योंकी भीड़ सप्ताहकथामें लगने लगी। और इस महान् आश्चर्यजनक सत्य घटनासे पुनर्जन्म, पुराण, वेद-शास्त्र और उनके द्वारा बताये गये उपायोंपर लोगोंका विश्वास बढ़ता गया।

अन्तमें उस आत्माने अपने भाइयोंसे और अपनी मातासे कहा कि 'हमारे पिताजीकी भी मुक्ति नहीं हुई है, क्योंकि आजकलके लोग अपने माता-पिताकी सम्पत्ति तो लेते हैं, किंतु उनकी अन्त्येष्टि और उनके निमित्त श्राद्ध-तर्पण, ब्राह्मण-भोजन, दान-पुण्य इत्यादि शास्त्रीय कर्म विधि-विधानोंके द्वारा श्रद्धा-विश्वासपूर्वक नहीं करते। इसलिये उन माता-पिताओंको अधोगतिमें जाना पड़ता है। अतएव आप पिताजीकी मुक्तिके लिये भी श्रीमद्भागवत-सप्ताह करवाना, तभी उमकी मुक्ति होगी।'

इन सब घटनाओंको सुनकर कलकत्तेसे उस परलोकगत आत्माकी सास भी श्रीमद्भागवत-सप्ताहमें भाग लेनेके लिये वहाँपर आ गयी। उस आत्माने अपनी चचेरी बहनके शरीरमें प्रवेश करके अपनी उस साससे कहा कि 'इस श्रीमद्भागवत-सप्ताह करानेका जो भी खर्च होगा, उस सब खर्चको आप मेरे ससुरालवालोंकी तरफसे दिलवाना, क्योंकि मरनेके बाद विवाहिता स्त्रीकी सारी उत्तरक्रिया करनेका दायित्व ससुरालवालोंपर ही होता है, माता-पिता अथवा भाई-बन्धुओंपर नहीं। अतः यदि आप इस श्रीमद्भागवत-सप्ताहका खर्च नहीं देंगी तो मेरे माता-पिताके द्वारा खर्च होनेवाले सप्ताहसे मेरी मुक्ति नहीं होगी।' सासने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया।

उधर श्रीमद्भागवत-सप्ताह सानन्द समाप्त होनेपर वह आत्मा सद्‌गतिको प्राप्त हो गयी और इधर उसकी जीवित चचेरी बहन भी सब प्रकारके रोग-शोकसे मुक्त हो गयी। आज वह पूर्ण स्वस्थ है और उसके सारे घरवाले भी आनन्द मना रहे हैं।

यह है श्रीमद्भागवत महापुराणकी अद्भुत महिमा, जिसके सुननेमात्रसे परलोकगत आत्माको पिशाच-योनिसे तत्काल छुटकारा मिल गया, उसकी सद्गति हो गयी। इस सत्य घटनासे सिद्ध हो जाता है कि हमारे शास्त्र-पुराणोंकी सभी बातें अक्षरशः बिलकुल सत्य हैं। आशा है, पाठक अपने सत्य सनातनधर्मके प्राण इन पुराणोंकी अद्भुत महत्ताको समझेंगे और इन पुराणोंके बताये अनुसार चलकर सनातनधर्मकी शरणमें रहकर अपना और अपने देश-जातिका परम कल्याण करेंगे। —भक्त श्रीरामशरणदासजी

(प्रेषक—श्रीशिवकुमार गोयल)

(२)

करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी

घटना उन दिनोंकी है, जब मैं अपनी पुत्रीके विवाहके लिये बहुत परेशान था। हर प्रकारसे प्रयास कर रहा था; परंतु कोई प्रयास सफल होता दिखायी नहीं दे रहा था। फिर भी प्रभुपर विश्वास था कि वे मेरी सारी चिन्ताएँ अवश्य दूर करेंगे। इसी विश्वासके सहारे मैं प्रयास कर रहा था। उन्हीं दिनों एक दिन मैंने 'कल्याण'में एक घटना पढ़ी। उसे पढ़कर मेरे मनमें प्रेरणा हुई कि मैं भी घरपर भगवान्‌का नाम-जप प्रारम्भ करा दूँ, शायद उससे कोई राह निकल आये। मैंने अपनी पत्नीसे 'नमः शिवाय' मन्त्रका दो लाख जप करनेको कहा। पत्नीने उसी दिनसे जप करना प्रारम्भ कर दिया। इधर स्वयं मैंने भी चलते-फिरते, उठते-बैठते 'सीताराम' का जप करना प्रारम्भ किया।

आशुतोष भगवान् शंकरका जप निरन्तर जारी रहा। मुझे विश्वास था कि कहीं-न-कहीं शीघ्र ही कन्याका रिश्ता तय हो जायगा। भगवान्‌ने मेरे विश्वासकी लाज रखी। अभी दो लाख मन्त्रोंका जप पूर्ण भी नहीं हुआ था कि उससे पहले ही अप्रत्याशित ढंगसे १३ मार्च १९९१ को मेरी पुत्रीका विवाह हो गया। किसी भी प्रकारकी कोई परेशानी नहीं हुई। भण्डारको अन्नपूर्णाजीने अक्षय बना दिया। लोग स्वयं आकर मेरी मदद करने लगे। मेरी सारी कठिनाई परम प्रभुने स्वयं अपने ऊपर ले ली और विश्वरूपमें मेरी मदद की। उनकी यह भक्तवत्सलता देख हम पति-पत्नी भाव-विभोर हो गये। उनकी कृपासे पुत्रीको घर, वर तथा कुल सब कुछ अनुपम मिला। तबसे हम दोनोंने भगवान्‌का नाम-जप छोड़ा नहीं और उसे आजतक निभा रहे हैं।

—श्रीभुवनेश्वर

मनन करने योग्य

मोचीमें मनुष्यत्व

एक गरीब भूखे ब्राह्मणने किसी बड़े शहरमें ढाई पहर घर-घर धक्के खाये, परंतु उसे एक मुट्ठी चावल किसीने नहीं दिया। अन्तमें वह थक गया और निराश होकर रास्तेके एक किनारे बैठकर अपने भाग्यको कोसने लगा—'हाय ! मैं कैसा अभागा हूँ कि इतने धनी शहरमें किसीने एक मुट्ठी चावल देकर मेरे प्राण नहीं बचाये। इसी समय उसी रास्तेसे एक सौम्यमूर्ति साधु जा रहे थे, उनके कानोंमें ब्राह्मणकी करुण आवाज गयी और उन्होंने पास आकर पूछा—'क्यों भाई, यहाँ बैठे-बैठे तुम क्यों अपनेको कोस रहे हो ?' दरिद्र ब्राह्मणने कातर-कण्ठसे कहा—'बाबा ! मैं बड़ा ही भाग्यहीन हूँ, सुबहसे ढाई पहर दिन चढ़ेतक मैं द्वार-द्वार भटकता रहा, कितने लोगोंके सामने हाथ फैलाया, रोया, गिड़गिड़ाया; परंतु किसीने हाथ उठाकर एक मुट्ठी भीख नहीं दी। बाबा ! भूख-प्यासके मारे मेरा शरीर अत्यन्त थक गया है, अब मुझसे चला नहीं जाता, इसी कारण यहाँ बैठा अपने भाग्यपर रो रहा हूँ।'

साधुने हँसकर कहा—'तुमने तो मनुष्यसे भीख माँगी ही नहीं, मनुष्यसे माँगते तो निश्चय ही भीख मिलती।' ब्राह्मणने चकित होकर कहा—'बाबा ! तुम क्या कह रहे हो। मैंने दोनों आँखोंसे अच्छी तरह देखकर ही भीख माँगी है। सभी मनुष्य थे, पर किसीने मेरी कातर पुकार नहीं सुनी।'

साधु बोले—'मनुष्यके दुःखको देखकर जिसका हृदय नहीं पिघलता, वह कभी मनुष्य नहीं हो सकता, वह तो

मनुष्यदेहधारी पशुमात्र है। तुम यह चश्मा ले जाओ, एक बार इसे आँखोंपर लगाकर भीख माँगो, मनुष्यसे भीख माँगते ही तुम्हारी आशा पूर्ण होगी—तुम्हें मनचाही वस्तु मिलेगी।' साधुने इतना कहकर उसे एक चश्मा दिया और अपना रास्ता लिया।

ब्राह्मणने मन-ही-मन सोचा कि 'यह तो बड़ी आफत है, चश्मा लगाये बिना क्या मनुष्य भी नहीं दिखायी देगा ? जो कुछ भी हो—साधुके आज्ञानुसार एक बार चश्मा लगाकर घूम तो आऊँ।' यह सोचकर ब्राह्मण चश्मा लगाकर भीखके लिये चला। तब उसे जो दृश्य दिखायी दिया, उसे देखकर तो उसकी बोलती बंद हो गयी और सिरपर हाथ रखकर वह एक बार तो बैठ गया फिर बिना चश्मेके जिन लोगोंको मनुष्य समझकर ब्राह्मणने भीख माँगी थी, अब चश्मा लगाते ही उनमें किसीका मुँह सियारका दिखायी देने लगा, किसीका कुत्ते या बिल्लीका और किसीका बंदर या बाघ-भालूका-सा। इस प्रकार उस शहरके घर-घरमें घूमकर वह संध्यासे कुछ पहले एक मैदानमें आ पहुँचा। वहाँ उसने देखा—पेड़के नीचे एक मोची फटे जूतेको सी रहा है। चश्मेसे देखनेपर उसका मुख आदमीका-सा दिखायी दिया। उसने कई बार चश्मा उतारकर और लगाकर देखा—ठीक मनुष्य ही नजर आया, तब उसे बड़ा आश्चर्य हुआ और वह मन-ही-मन सोचने लगा 'मैं ब्राह्मण होकर भला फटे जूते गाँठनेवाले इस मोचीसे कैसे भीख माँगू।' इतनेमें मोचीकी दृष्टि ब्राह्मणपर पड़ी और दृष्टि पड़ते ही उसने दोनों हाथ जोड़कर कहा—'महाराजजी ! आप बड़े उदास और थके मालूम होते हैं—आपने अभीतक निश्चय ही कुछ खाया नहीं है। मैं अति दीन-हीन और नीच जाति हूँ। मेरी हिम्मत नहीं होती कि मैं आपसे कुछ प्रार्थना करूँ। पर यदि दया करके आप मेरे साथ चलें तो दिनभरमें जूते गाँठकर मैंने जो दो-चार पैसे कमाये हैं, उन्हें मैं पासके ही हलवाईकी दूकानपर दे देता हूँ, आप कृपा करके कुछ जलपान कर लेंगे तो आपको तनिक स्वस्थ देखकर इस कँगलेके हृदयमें आनन्द समायेगा नहीं।'

ब्राह्मणके प्राण भूख-प्यासके मारे छटपट कर रहे थे। मोचीकी सौजन्य और सहानुभूतिपूर्ण बात उन्होंने तुरंत मान ली। दोनों हलवाईकी दूकानपर पहुँचे। मोचीने अपना बटुआ झड़काया तो उसमेंसे कुछ पैसे निकले। मोचीने वे पैसे हलवाईके पास रखकर कहा—'हलवाई दादा ! इन पैसोंसे जितनी आ सके, उतनी मिठाई महाराजजीको तुरंत दे दो, उसे खाकर इनको जरा तो आराम मिले। मैं अभी आता हूँ।'

इतना कहकर परदुःखकातर मोची मुट्ठी बाँधकर घरकी ओर दौड़ा और उसने मन-ही-मन विचार किया कि 'घरमें जो एक नया जूतेका जोड़ा बनाया रखा है, उसे अभी बेच दूँ और जितने पैसे मिलें, लाकर तुरंत इन ब्राह्मण महाराजको दे दूँ, तब मेरे मनको चैन पड़े।' वह तुरंत घर पहुँचा और जूतेका जोड़ा लेकर बाजारमें प्रधान चौराहेपर खड़ा हो गया। वहाँके राजा संध्याके समय जब घूमने जाते, तब प्रतिदिन अपनी पसंदका नया जूता खरीदकर पहनते। नित्य नये जूते खरीदकर लानेका काम मन्त्रीजीके जिम्मे था। मन्त्रीने कई जूते ले जाकर राजाको दिखाये, परंतु उनमेंसे कोई भी राजाको पसंद नहीं आया और न किसीका माप ही पैरमें ठीक बैठा। राजाने मन्त्रीको डाँटकर कहा कि 'मैं पाँच सौ रुपये दाम दूँगा। तुम जल्दी मेरी पसंद तथा ठीक मापके जूते लाओ। नहीं तो, मैं घूमने नहीं जा सकूँगा और वैसी हालतमें तुमको कठोर दण्ड दिया जायगा।' मन्त्री बेचारे भगवान्‌का नाम लेकर काँपते हुए फिर जूतेकी खोजमें निकले और चौराहेपर पहुँचते ही एक मोचीको सुन्दर नये जूते लिये खड़े देखा। जूते लेकर तुरंत मन्त्रीजी राजाके पास पहुँचे। मोचीको भी वे साथ ले आये थे। भगवान्‌की कृपासे यह जूता-जोड़ा राजाको बहुत ही पसंद आया और पैरोंमें तो ऐसा ठीक बैठा मानो पैरोंके माप देकर ही बनवाया गया हो। राजाने प्रसन्न होकर मोचीको पाँच सौ रुपये जूतेका मूल्य और पाँच सौ रुपये इनाम—कुल एक हजार रुपये देनेका आदेश दिया। मोचीने आनन्दविह्वल होकर गद्‌गद स्वरमें कहा—'सरकार ! जरा ठहरनेकी आज्ञा हो, मैं अभी आता हूँ, ये रुपये जिनको मिलने हैं, उनको मैं तुरंत ले आता हूँ। सरकार ! उन्हींके हाथमें रुपये दिला दीजियेगा।'

मोचीकी यह बात सुनकर राजाको बड़ा विस्मय हुआ और राजाने पूछा—'ये जूते तो तुम्हारे अपने हाथके बनाये हैं, फिर तुम इनके दाम दूसरेको कैसे दिलवाना चाहते हो ?'

मोचीने कहा—'सरकार ! मैंने इन जूतोंके दाम एक गरीब ब्राह्मणको देनेका संकल्प मनमें कर लिया है। तब मैं

इनका मूल्य कैसे ले सकता हूँ ? पूर्वजन्मोंके कितने पापोंके फलस्वरूप तो मुझे इस नीच कुलमें जन्म और नीच जीविका मिली है, फिर इस जन्ममें ब्राह्मणका हक छीन लूँगा तब तो नरकमें भी मुझे जगह नहीं मिलेगी।' इतना कहकर मोची दौड़कर हलवाईकी दूकानपर पहुँचा और हाथ जोड़कर ब्राह्मणसे बोला—'महाराजजी ! दया करके एक बार मेरे साथ राजमहलमें चलिये।' ब्राह्मण उसके आत्मीयतापूर्ण व्यवहारसे आकृष्ट होकर मन्त्रमुग्धकी तरह उसके पीछे चल पड़ा और राजाके सामने जा पहुँचा। तब मोचीने राजासे कहा—'सरकार ! इन्हीं ब्राह्मण देवताको जूतेका मूल्य दिलवानेका आदेश दिया जाय।' राजाने मन्त्रीको एक हजार रुपये ब्राह्मणको देनेकी आज्ञा दी और विस्मय तथा कौतूहलपूर्ण हृदयसे ब्राह्मणसे पूछा—'पण्डितजी ! हमारी राजधानीमें इतने धनी-मानी लोगोंके होते हुए आपने इस मोचीसे भीख क्यों माँगी ? तब सरल-हृदय ब्राह्मणने सारा प्रसंग सुनाकर चश्मा दिखलाया और राजासे कहा कि 'आप स्वयं इस चश्माको लगाकर सत्यकी परीक्षा कर लें।' राजाने चश्मा लगाकर सबसे पहले मन्त्रीके मुँहकी ओर देखा तो वह सियार दिखायी दिया। चारों तरफ देखा—कोई कुत्ता, कोई बिल्ली, कोई बंदर, कोई बकरी, कोई भेड़, कोई गधा और कोई बैल दिखायी दिया। चश्मा उतारकर देखा तो सभी मनुष्य दीख पड़े। तब राजाने अत्यन्त विस्मित होकर चश्मा अपने मन्त्रीको देकर कहा—'देखो मन्त्रीजी ! चारों ओर पशु-ही-पशु दिखायी देते हैं, यह बड़े आश्चर्यकी बात है।' तब मन्त्रीजीने चश्मा लगाकर राजाके मुखकी ओर देखा तो एक बड़ा बाघ दीख पड़ा और चारों ओर दरबारी लोग भाँति-भाँतिके जानवर दीखे, तब राजाने एक दर्पण मँगाकर चश्मा लगाकर अपना मुख देखा और यों सभीको अपना-अपना मुँह दिखलाया। परंतु चश्मा लगानेपर सभी लोगोंको मोचीका मुख आदमीका-सा ही दिखायी दिया। तब राजाने मोचीके चरणोंमें गिरकर कहा—'आजसे यह राज्य तुम्हारा हुआ। मैं राज्य, धन, ऐश्वर्य नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ—केवल तुम्हारे-जैसा उच्च और विशाल हृदय। मनुष्यका शरीर धारण करके यदि मनुष्यका-सा हृदय नहीं हुआ तो मानव-जन्मकी क्या सार्थकता है ?

मोचीने कहा—'सरकार ! आप जो कुछ देना चाहते हों, इन ब्राह्मण देवताको दीजिये। मैं दीन-हीन कंगाल राज्य लेकर क्या करूँगा।' वह दरिद्र ब्राह्मण सोचने लगा—'पता नहीं मेरी कितने जन्मोंकी तपस्या है, जिसके फलस्वरूप आज इस मोचीरूपधारी विशाल-हृदय महापुरुषके दर्शन और कृपा प्राप्त करनेका मुझे सौभाग्य मिला है।' यों विचारकर कृतज्ञ-हृदयसे उसके चरणोंमें प्रणत होकर ब्राह्मणने कहा—'भाई मोची ! मैं न तो राज्य चाहता हूँ और न देवत्व, न ब्रह्मत्व या समस्त विश्वका आधिपत्य ही चाहता हूँ। मैं तो चाहता हूँ तुम्हारे-जैसा मनुष्यत्व।'

मोचीको भावावेश हो गया और वह आकुल-हृदयसे भगवान्के चरण-कमलोंका मधुर स्मरण करके अश्रुपूर्ण-लोचन और प्रेमसे गद्गद-कण्ठ होकर कहने लगा—'मेरे अनन्त करुणामय प्रभो ! धन्य तुम्हारी करुणाको ! मैंने केवल तुच्छ जोड़े जूतेका मूल्य ब्राह्मणको देनेका संकल्प किया था। इसीसे तुम मुझको इतना बढ़ा रहे हो। तुम्हारे चरणोंमें शरीर, मन, प्राण सर्वस्व समर्पण करके जगत्की सेवा कर सकनेपर तो तुम पता नहीं, कितना प्यार करते होगे।'

यह कहकर मोची आँखोंसे आनन्दाश्रुकी वर्षा करता हुआ वहाँसे चुपचाप चल दिया। राजा और ब्राह्मण चकित-दृष्टिसे उसकी ओर देखते रह गये।

'यदि भारतीय हिन्दू-जातिमें कभी एकता हो सकती है, यदि जगत्का सारा आस्तिकसमाज कभी प्रेमके एक सूत्रमें बँध सकता है, यदि कभी जगत्में विश्वप्रेमका पूरा प्रसार हो सकता है, तो मेरी समझसे वह भगवन्नामसे ही सम्भव है। आज भगवान्को भूलकर लोग कार्य करते हैं, इसीलिये तो उन्हें सफलता नहीं मिलती।'

—भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार ('श्रीभगवन्नाम-चिन्तन' पुस्तकसे)

अयोध्यामें भगवान् श्रीरामका प्राकट्य हुआ था

पिछले दिनों 'कल्याण'के ७वें अङ्कमें श्रीरामजन्मभूमिके सम्बन्धमें कुछ विचार प्रस्तुत किये गये थे। भगवान् श्रीरामका जन्म किस स्थानपर हुआ और श्रीरामजन्मभूमिकी अपने शास्त्रोंके अनुसार क्या महिमा है ? इस सम्बन्धमें पुराणोंके संदर्भ और वचन उद्धृत किये गये थे। पिछले दिनों दिल्लीसे प्रकाशित अंग्रेजीके एक प्रमुख दैनिक पत्रमें रामजन्मभूमिपर एक लेख छपा था, जिसमें किन्हीं महानुभावने अपनी बुद्धिके अनुसार यह तर्क लिखा है कि 'जिस स्थानपर रामका जन्म हुआ, वह स्थान तो प्रसूतिस्थल होनेके कारण अशुद्ध है, कारण, उस स्थानपर तो खूनके छींटे और धब्बे भी पड़े होंगे, जो अपवित्र होते हैं, इसलिये वहाँ पूजा-स्थल अथवा मन्दिर आदि नहीं बनाया जाना चाहिये।'

If the spot inside the Babri Masjid where the idol of Ram Lala is kept is the 'exact spot' where he was born, *then it cannot be a place of worship because in any childbirth, blood is spilt, which renders the place impure.*

वास्तवमें मनुष्यकी बुद्धि सीमित होती है। वह अपनी सीमित बुद्धिके अनुसार कभी-कभी कुतर्क भी करने लगता है। भारतीय संस्कृति और सनातनधर्मके अनुसार आनन्दकन्द ब्रह्माण्डनायक सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्म-प्रभु समय-समयपर भारत-भूमिमें अवतरित होते हैं। श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्ने स्वयं यह घोषणा की है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ (४।७)

'जब-जब धर्मकी ग्लानि होती है अर्थात् धर्मपर घोर संकट और आपत्ति आती है तो मैं स्वयंको प्रकट करता हूँ।'

संत गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने भी श्रीरामचरितमानसमें भगवान् श्रीरामके अवतरणके सम्बन्धमें यह लिखा है—

बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार। निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार॥

—परंतु भगवान्‌का यह प्राकट्य सामान्य जनोंकी तरह प्रसवपीड़ासे युक्त प्रसूति-गृहमें नहीं होता। वे तो आनन्दके सिन्धु हैं। वहाँ न तो कोई पीड़ा है और न कोई रक्तस्राव आदि लौकिक उपचार हैं। भगवान्के जन्म-कर्म तो दिव्य हैं, जो 'सर्वसामान्यसे भिन्न हैं तथा अलौकिक हैं।' श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्ने स्वयं कहा है—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः। त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥ (४।९)

'मेरे जन्म एवं कर्म दिव्य हैं, इस बातको जो तत्त्वसे जानता है, हे अर्जुन! वह मुझको ही प्राप्त होता है।'

इसलिये भगवान्ने जब-जब भी अवतार लिया है, वे सत्-चित्-आनन्द-स्वरूपमें ही प्रकट हुए हैं। अस्थि, चर्म, रक्त, मांस-मज्जाका तो वहाँ नाम ही नहीं है— ***'चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी॥'*** रामचरितमानसमें भगवान्के प्राकट्यका वर्णन इस रूपमें हुआ है—

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी। हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी॥
लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुज चारी। भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी॥

भगवान्ने प्रकट होकर चतुर्भुजरूपमें सर्वप्रथम माता कौसल्याको दर्शन दिया। माताके अनुनय-विनय करनेपर ही भगवान्ने शिशुरूप धारण कर रुदन करनेकी लीला की—

माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा। कीजै सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा॥
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा।

इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णका प्राकट्य कंसके कारागारमें चतुर्भुजरूपमें ही हुआ था। सर्वप्रथम भगवान्के दिव्य दर्शन माता-पिताको हुए। देवकी-वसुदेवके अनुरोध करनेपर भगवान्ने शिशुरूप धारण किया और वसुदेवके द्वारा नन्दके घर पहुँचाये गये। इसके बाद ही कारागारके पहरेदारोंको यह मालूम हुआ कि देवकीसे एक बालकका जन्म हुआ। श्रीनृसिंह आदि भगवान्के अन्य अवतारोंका प्राकट्य भी इसी प्रकार शास्त्रोंमें वर्णित है। इसीलिये भगवान्के आविर्भाव-दिवसपर अपने देशमें रामनवमी, जन्माष्टमी, वामन-द्वादशी, नृसिंह-चतुर्दशी आदि जयन्तियाँ मनायी जाती हैं तथा प्रभुकी जन्मभूमि परम पवित्र तीर्थस्थलके रूपमें मानी जाती है, जिसकी शास्त्रोंमें तथा संत-महात्माओं एवं ऋषि-महर्षियोंद्वारा अपार महिमा वर्णित है। प्रायः जो लौकिक पुरुष होते हैं, उनकी जयन्ती न मनाकर निर्वाण-दिवस मनानेका ही नियम है। भूतभावन भगवान् सदाशिवके द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग और स्वयम्भू लिङ्गोंका प्राकट्य भी इसी रूपमें हुआ है। जिस स्थलपर वे प्रकट हुए, वही स्थल उनकी पूजा-अर्चाका महत्त्वपूर्ण मन्दिर बन गया। अतः भगवान् श्रीरामके जन्म और उनकी जन्मभूमिके सम्बन्धमें ऐसे कुतर्क नहीं प्रस्तुत किये जाने चाहिये, जिससे जन-सामान्यमें भ्रमकी स्थिति उत्पन्न हो।

—सम्पादक

'कल्याण'के पुराने प्राप्य विशेषाङ्क

मत्स्यपुराणाङ्क (पूर्वार्ध), सानुवाद—'कल्याण'-वर्ष ५८ (सन् १९८४ ई०) में प्रकाशित इस अङ्कमें 'मत्स्यावतार'की मुख्य कथाके अतिरिक्त विविध कल्याणकारी साधनों, महान् उपदेशों और उच्चकोटिके आदर्श चरित्रोंका वर्णन है। पृष्ठ-संख्या ४६८, बहुरंगे चित्र १०, मूल्य (डाकखर्च-सहित) रु० २४.०० मात्र। बहुत थोड़ी प्रतियाँ ही बची हैं, इच्छुक सज्जनोंको मँगानेमें शीघ्रता करनी चाहिये।

योगतत्त्वाङ्क

'कल्याण'-वर्ष ६५ (सन् १९९१ ई०) का विशेषाङ्क। इसमें योगविषयक महत्त्वपूर्ण सामग्रीका संकलन है। योग-जैसे गम्भीर और कल्याण-साधनोपयोगी विषयको सर्वसुलभ और सहज-रूपमें प्रस्तुत करनेकी दृष्टिसे इस अङ्कमें योगकी परिभाषा, महत्त्व, स्वरूप-तत्त्व एवं योग-साधनाके सभी अङ्ग-उपाङ्गोंपर सरल, सुबोध भाषामें प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त इसमें योगके विविध भेदसहित विभिन्न साधनों, योगशास्त्रों, योगासनों और प्राचीन कालसे अर्वाचीन कालतकके सुप्रसिद्ध योगसिद्ध महात्माओं एवं योग-साधकोंके रोचक जीवन-चरित्र और उनकी साधना-पद्धतियोंका वर्णन भी उपादेय सामग्रीके रूपमें प्रस्तुत किया गया है।

पृष्ठ-संख्या ४०८, बहुरंगे चित्र ९ और अनेक सादे चित्र हैं। मूल्य रु० ५५.०० (डाकखर्चसहित)। यह अङ्क बहुत सीमित संख्यामें ही बचा है, अतः इच्छुक महानुभावोंको मँगानेमें विलम्ब नहीं करना चाहिये।

ग्राहक महानुभावोंसे सहयोग-हेतु प्रार्थना

इस बार इस बातका विशेष प्रयास है कि जनवरी १९९३ के विशेषाङ्क—'शिवोपासनाङ्क'का प्रेषण जनवरी माससे प्रारम्भ कर दिया जाय, जिससे सभी ग्राहकोंको जनवरी तथा फरवरीके अङ्क समयसे प्राप्त हो सकें। इसके लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि ग्राहक महानुभाव अपना वार्षिक शुल्क हमें नवम्बर मासके अन्ततक अवश्य भेज दें; क्योंकि सीमित समयमें भारी संख्यामें आये मनीआर्डरोंकी व्यवस्थामें पर्याप्त समय लगता है। यह चेष्टा भी रहती है कि रुपयोंका समायोजन सही हो। आपके द्वारा मनीआर्डरसे रुपया भेजनेपर रास्तेमें एवं यहाँ डाकघरसे भुगतान मिलनेमें भी पर्याप्त समय लग जाता है, फलस्वरूप कार्यालयको एवं आपको (दोनोंको ही) कतिपय असुविधाओंका सामना करना पड़ता है।

विशेषाङ्क भेजनेकी प्रक्रिया प्रारम्भ हो जानेपर जिन ग्राहकोंसे शुल्क-राशि नहीं प्राप्त हुई होती है, उन्हें नियमानुसार विशेषाङ्क वी०पी०पी० द्वारा भेजा जाता है। यदि आपने रुपया विलम्बसे भेजा तो परिस्थिति प्रतिकूल हो सकती है। कारण, बहुधा उधरसे ग्राहक सज्जन रुपये भेजते हैं और इधरसे उनके नाम वी०पी०पी० भेज दी जाती है, इस स्थितिमें अधिकांश ग्राहक यह समझकर वी०पी०पी० लौटा देते हैं कि हमने तो रुपये भेज दिये हैं; वी०पी०पी० क्यों छुड़ायें ? अतः ग्राहक महानुभावोंसे प्रार्थना है कि ऐसी परिस्थितिमें वे कृपया वी०पी०पी० न लौटायें, वरन् उससे एक नया ग्राहक बनानेका कष्ट करें।

उपर्युक्त परिस्थितिसे बचने-हेतु सभी ग्राहक महानुभावोंसे विशेष अनुरोध है कि वे अपना वार्षिक शुल्क इस बार नवम्बर, १९९२ तक अवश्य भेज देनेकी कृपा करें। यह भी विनम्र निवेदन है कि 'कल्याण'के प्रचार-प्रसारमें अधिकाधिक सहयोग करते हुए आप कृपया कम-से-कम दो नये ग्राहक बनानेका विशेष प्रयास अवश्य करें। तदर्थ हम आपके अत्यन्त आभारी होंगे।

व्यवस्थापक—'कल्याण'-कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

आगामी वर्षका विशेषाङ्क—'शिवोपासनाङ्क'

['कल्याण'-वर्ष ६७वाँ, जनवरी सन् १९९३ ई०]

'शिव' शब्द नित्य, विज्ञानानन्दघन परमात्माका वाचक है। यह उच्चारणमें बहुत ही सरल, अत्यन्त मधुर और स्वाभाविक ही शान्तिप्रद है। जो पुरुष उन त्रिनेत्र, व्याघ्राम्बरधारी, सदाशिव परमात्माको निर्गुण, निराकार एवं सगुण निराकार समझकर उनकी सगुण, साकार दिव्यमूर्तिकी उपासना करता है, उसीकी उपासना सच्ची और सर्वाङ्गपूर्ण है। इस समग्रतामें जितना अंश कम होता है, उतनी ही उपासनाकी सर्वाङ्ग-पूर्णतामें कमी है और उतना ही वह शिव-तत्त्वसे अनभिज्ञ है।

महाभारत, रामायण, पुराण, उपपुराण सबमें भगवान् शिवका तत्त्व वर्णित है। उन सबमें उनके निराकार और साकार दोनों ही भावोंका निदर्शन पाया जाता है। शिव, विष्णु तथा ब्रह्मादि समस्त देवता अद्वितीय निराकार परमात्माके ही रूप होनेपर भी, अन्य देवोंकी अपेक्षा जटा-जूटधारी शिवमें अनेक विशेषताएँ हैं। शिव अपने सेवकोंपर न तो कभी क्रोध करते हैं और न उन्हें दण्डित। वह सदैव मङ्गलकर और कृपालु रहते हैं, सबका कल्याण चाहते हैं, इसीसे उनका 'शिव' नाम सार्थक है। संक्षेपतः शिव ही निराकार, निर्गुण, निष्कल ब्रह्म हैं और शिवा—उमा ही उनकी माया हैं। शक्तिको माया कहा जाता है। शिव और शक्ति अविभक्तरूपमें ही उपासनीय हैं।

परम कल्याणरूप और संसारके लिये सुख-स्वरूप शिवकी उपासना मनुष्यमात्रके लिये कल्याणकारी है। क्योंकि आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक—इन तीन प्रकारके दुःखोंका नाश करनेके लिये ही भगवान् शिवने त्रिशूल धारण किया है—'त्रयीशूलनिर्मूलनं शूलपाणिम्।' अर्थात्—भगवान् शंकर तीनों शूलोंको निर्मूल करनेवाले हैं। इस प्रकार संसारसे मुक्त करनेवाले भगवान् शंकर ही सदा ध्येय और भजनीय हैं—'शिव एव सदा ध्येयः सर्वसंसारमोचकः।' अतएव 'बहुजनहिताय'—सबके कल्याणार्थ 'कल्याण'का आगामी विशेषाङ्क—'शिवोपासनाङ्क'के रूपमें प्रकाशित करनेका शुभ निर्णय भगवान् शूलपाणिकी विशेष कृपानुकम्पासे ही लिया गया है। आशा है, सभी आस्तिक और कल्याणकामी सज्जन एवं शिवभक्त तथा साधक महानुभाव इसकी तात्त्विक-उपासनापरक सामग्रीसे विशेष लाभ उठायेंगे।

लगभग ४००से अधिक पृष्ठोंमें उपादेय पठनीय सामग्री, प्रसङ्गानुसार भावपूर्ण अनेक बहुरंगे, सादे तथा रेखाचित्र एवं आकर्षक सचित्र आवरण इसकी मुख्य विशेषताएँ होंगी। शिव-तत्त्व एवं उपासनासम्बन्धी लेखोंके अतिरिक्त इसमें शिव-भक्त और शिवोपासकोंके अनेक आदर्श और प्रेरक चरित्र पाठकोंके लिये विशेष सुरुचिपूर्ण और आकर्षणके विषय होंगे। वार्षिक शुल्क पूर्ववत् ५५.०० मात्र, एवं सजिल्द विशेषाङ्कका ६०.०० मात्र है। विशेषाङ्कका मुद्रण शीघ्र आरम्भ होनेवाला है। हमारा यह पूर्ण प्रयास है कि इस बार अङ्क समयसे प्रकाशित हो और जिज्ञासु जन इससे अधिकाधिक लाभ उठायें।

'कल्याण'के पुराने तथा नये—सभी ग्राहक सज्जनोंको वार्षिक मूल्य शीघ्र भेजकर अपनी प्रति पूर्व सुरक्षित करा लेनी चाहिये। सभी इच्छुक महानुभाव इस विशेषाङ्कके स्वयं तो ग्राहक बनें ही, साथ ही अपने इष्ट-मित्रों और परिचितोंको भी प्रेरणा देकर अधिक-से-अधिक संख्यामें ग्राहक बनाकर उन्हें लाभान्वित करें। व्यवस्थापक—'कल्याण'